www.terapanthinfo.com

इस अंक में

अहिंसक-नैतिक चेतना का अग्रदूत पाक्षिक

अणुव्रत

वर्ष : 55 ■ अंक : 23 ■ 1-15 अक्टूबर, 2010

संपादक : डॉ. महेन्द्र कर्णावट
सहयोगी संपादक : निर्मल एम. रांका

अणुव्रत में प्रकाशित रचनाकारों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादक/प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

❐ सदस्यता शुल्क :

- एक प्रति : बारह रु.
- वार्षिक : 300 रु.
- त्रैवार्षिक : 700 रु.
- दस वर्षीय : 2000 रु.

❐ विज्ञापन सहयोग :

- द्वितीय मुख पृष्ठ 'रंगीन' : 10,000 रु.
- तृतीय मुख पृष्ठ 'रंगीन' : 10,000 रु.
- चतुर्थ मुख पृष्ठ 'रंगीन' : 10,000 रु.
- साधारण पृष्ठ 'पूरा' : 3,000 रु.
- साधारण पृष्ठ 'आधा' : 2,000 रु.

❐ सम्पर्क सूत्र :

अणुव्रत महासमिति
210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली–110002

दूरभाष : (011) 23233345
फैक्स : (011) 23239963

E-mail : anuvrat_mahasamiti@yahoo.com
Website : anuvratinfo.org

- अणुव्रत का ध्येय — *आचार्य तुलसी* — 3
- अहिंसा का द्वार — *आचार्य महाप्रज्ञ* — 5
- विष क्या है? अमृत क्या है? — *आचार्य महाश्रमण* — 8
- तुलसी के सपनों का महिला समाज — *साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा* — 10
- अहिंसक समाज-रचना के सूत्र — *डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'* — 12
- बापू के काम की चीज — *डॉ. शुभंकर बनर्जी* — 15
- सत्य एवं अहिंसा का मार्ग — *डॉ. बी.एन. पांडेय* — 16
- अहिंसा दिवस : भारत का राष्ट्रीय पर्व — *डॉ. कपूरचंद जैन* — 19
- अहिंसा के लिए शिक्षा — *डॉ. जमनालाल बायती* — 20
- महात्मा गांधी के प्रेरक विचार — *डॉ. रामसिंह यादव* — 23
- आज की आवश्यकता हिंसा या अहिंसा — *अजीतकुमार अजमेरा* — 24
- अभय का अस्त्र : अहिंसा — *साध्वी स्वर्णरेखा* — 25
- सुविधाभोगी लोग — *सुषमा जैन* — 26
- अहिंसा सर्वोपरि धर्म है — *नरेन्द्र देवांगन* — 27
- कब होगा अंत हिंसा का — *सुनील परीट* — 28
- सभी जीवों का कल्याण — *प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव* — 29
- उपभोक्तावादी संस्कृति — *सविता लखोटिया* — 30
- नाम बड़े, दर्शन छोटे — *जसविंदर शर्मा* — 32
- प्रेरक एवं अनुकरणीय व्यक्तित्व : मिलाप दूगड़ — *विजयराज सुराणा* — 39

■ स्तंभ

- संपादकीय — 2
- राष्ट्र चिंतन — 7
- लघुकथा — 9
- झाँकी है हिन्दुस्तान की — 18
- काव्य — 9, 11, 17, 18, 22, 24
- प्रेरणा — 14, 26, 28
- अणुव्रत अधिवेशन — 31
- अणुव्रत आंदोलन — 33-38
- कृति — 40

www.terapanthinfo.com

शताब्दी वर्ष के मायने : ६ :

दैनिक जीवन से जुड़े हर कार्य को करवाने के लिए राजकीय कार्यालय-कर्मियों/नौकरशाहों एवं राजनेताओं को भेंट-पूजा चढ़ाना आम बात हो गई है। यह मान्यता बनी है कि बिना लिये-दिये कुछ हो नहीं सकता। छोटा व्यक्ति हो चाहे बड़ा, सभी को अपना काम निकलवाने के लिए लेने-देने की शिष्टाचारिता तो निभानी ही होगी। इसके अभाव में कार्य से सबंधित सभी कागजात रद्दी के ढेर की तरह मौन या फाइलों में दबे पड़े रहेंगे। शिष्टाचार रूपी यह भ्रष्ट आचरण हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

चुनाव, त्यौहार, विवाह, जन्मदिवस एवं अन्य प्रसंगों पर औद्योगिक घरानों ने राजनेताओं-राजकर्मियों को उपहार एवं नगद राशि भेंट स्वरुप देने का क्रम सैकड़ों वर्षों पूर्व प्रारंभ कर उसके एवज में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कीं और धनपति बने। इसी तर्ज पर चलते हुए स्वतंत्र भारत के नये उद्यमियों ने अपने व्यापार को विस्तार दिया और आज स्वतंत्र भारत का हर तीसरा नागरिक भ्रष्ट आचरण करने को विवश हो गया।

क्यों हो रहा है भ्रष्ट आचरण? प्रश्न की जड़ में जाते हैं तो लगता है परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाएँ हमें विवश कर रही है भ्रष्ट आचरण के लिए। भोगप्रधान जीवन व्यवस्था, बड़ा आदमी बनने की चाह, दहेज प्रथा इसके मूल में है। इन व्यवस्थाओं के चलते व्यक्ति ईमानदारी का जीवन जीए तो परिजनों के जहर बुझे व्यंग्य बाण सहने होते हैं जो उसे भ्रष्ट आचरण की राह पर ले जाते हैं। पुत्र-पुत्री के जन्म के साथ ही माता-पिता की भावनाएँ हिलोरे लेती हैं हम इसे भरपूर प्यार और खुशियां देंगे, उच्च शिक्षा दिला कर बड़ा आदमी बनाएंगे शादी धूमधाम से करेंगे, रहने के लिए सुविधायुक्त मकान बनाएंगे। सपनों के इस हवा-महल को आकार देने के लिए चाहिए अकूत धन-संपदा। जब छोटे से व्यापार या नौकरी से प्राप्त वेतन से संपदा का संकलन नहीं होता तो माता-पिता को चिन्ता सताती है कि सुविधायुक्त घर कैसे बनेगा, बच्चों को कैसे उच्च शिक्षा दिलाएंगे, दहेज का सामान कैसे जुटेगा, माँ-बाप की सेवा कैसे करेंगे, व्यापार को कैसे ऊँचाईयां दें, बेटे-बेटी के तकनीकी संस्थान में प्रवेश हेतु लाखों रु. कहाँ से आयेगा, बहिन का मायरा कैसे भरेंगे? प्रश्नों के इस चक्रव्यूह में उलझा व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठा बचाने के लिए छोटे मार्ग से अधिक धन अर्जित करने का विचार करता है और यहीं से प्रारंभ होती है भ्रष्ट आचरण की वह शृंखला जो कभी थमती नहीं।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी के शब्दों में विवाह आदि की सामाजिक परम्पराएं अधिक बोझिल एवं अनैतिक वातावरण की सर्जक बन गई हैं। बहुत सारे व्यक्ति अप्रामाणिकता को नहीं चाहते हुए भी इन परम्पराओं को निभाने के लिए अप्रामाणिक बनते है। समाज की सुव्यवस्था हो तो, इन पर सहज ही नियंत्रण हो सकता है। जब तक प्रचलित सामाजिक परम्पराओं में परिवर्तन नहीं होता है, तब तक अणुव्रती बनने में भी लोग कठिनाई का अनुभव करते है।

बड़ा आदमी बनने की आकांक्षा ने अर्थ की चमक बढ़ाई और इससे अर्थ संग्रह, शोषण, भ्रष्टाचार जैसी अवांछनीय प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला। समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए व्यक्ति अपनी सामर्थ्य से परे जाकर खर्च कर रहा है, फिजूलखर्ची कर रहा है आडम्बर-प्रदर्शन कर रहा है। इस कारण समाज में गलत प्रतिस्पर्द्धा पैदा हो रही है और व्यक्ति अनैतिकता, भ्रष्टाचार, मिलावट आदि की तरफ प्रवृत्त हो रहा है। अतः आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी पर रुढ़ सामाजिक परम्पराओं का परित्याग कर युगानुकूल स्वस्थ सामाजिक परम्पराओं को प्रतिष्ठापित कर स्वस्थ समाज बनाने का संकल्प करें। यही आह्वान है आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष का।

• **डॉ. महेन्द्र कर्णावट**

www.terapanthinfo.com

अणुव्रत का ध्येय

आचार्य तुलसी

भारतीय संस्कृति में मोक्ष की निश्चित अवधारणा है। इस संस्कृति में आस्था रखने वाला व्यक्ति अपने मन में मुक्त होने की घनीभूत इच्छा रखता है। इसी इच्छा से प्रेरित होकर वह अपने इष्ट से याचना करता है

असतो मा सत् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योः मा अमृतं गमय

'मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।' तीनों ही मांगे बहुत सुंदर हैं। सत्, प्रकाश और अमरत्व प्राप्त होने के बाद मनुष्य को चाहिए ही क्या? मैं इन वाक्यों को थोड़ा बदलना चाहता हूँ, याचना के स्थान पर पुरुषार्थ को जोड़ना चाहता हूँ। पुरुषार्थ में विश्वास रखने वाले व्यक्ति की भाषा होगी मैं असत् से सत् की ओर जाऊँ, मैं अंधकार से प्रकाश की ओर जाऊँ, मैं मृत्यु से अमरत्व की ओर जाऊँ। इसमें व्यक्ति का अपना कर्त्तव्य उजागर होता है। आस्था-प्रधान संस्कृति में याचना की बात अस्वाभाविक नहीं है, फिर भी इसमें पुरुषार्थहीनता नहीं होनी चाहिए। पुरुषार्थी व्यक्ति अपने इष्ट का संबल या आलंबन प्राप्त कर सकता है। उसका संकल्प होता है

अमग्गं परियाणामि मग्गं उवसंपज्जामि
अन्नाणं परियाणामि नाणं उवसंपज्जामि
मिच्छत्तं परियाणामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि

''मैं अमार्ग को छोड़ता हूँ और मार्ग को स्वीकार करता हूँ। मैं अज्ञान को छोड़ता हूँ और ज्ञान को स्वीकार करता हूँ। मैं मिथ्यात्व को छोड़ता हूँ और सम्यक्त्व को स्वीकारता हूँ।' इस प्रकार सोचने वाला व्यक्ति ईश्वर के प्रति आस्थाशील रहता हुआ भी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ का उपयोग करेगा। यदि हम बच्चों के अपरिपक्व मस्तिष्क में प्रारंभ से ही ऐसे संस्कार भरेंगे तो उनके अवचेतन मन में निरंतर पुरुषार्थ की लौ प्रज्वलित होती रहेगी। पुरुषार्थ के अभाव में किसी भी प्रकार की शिक्षा व्यक्तित्व-निर्माण में सहायक नहीं हो सकती।

शिक्षा पाने का अधिकारी कौन हो सकता है? इस जिज्ञासा के समाधान में आप्त पुरुषों ने कहा

विवत्ती अविणीयस्य संपत्ती विणीयस्य य।
जस्सेयं दुहओ नायं सिक्खं से अभिगच्छइ।।

अविनीत को विपत्ति और सुविनीत को संपत्ति मिलती है ये दोनों जिसे ज्ञात हैं, वही शिक्षा को प्राप्त होता है। शिक्षा का उद्देश्य है जीवन की विसंगतियों को दूर करना। इस उद्देश्य की पूर्ति उसी शिक्षा से हो सकती है, जो स्वयं विसंगतियों से दूर हो। जिस शिक्षा में मूलतः ही विसंगति हो, उससे विकास की संभावना कैसे की जा सकती है?

मेरे अभिमत से शिक्षा का पहला उद्देश्य होना चाहिए भीतर चेतना का जागरण। आज शिक्षा के द्वारा बुद्धि को जगाया जा रहा है, मन को जगाया जा रहा है, पर चेतना-जागरण की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। समस्या का मूल यही है। हमें इसी बिंदु पर गंभीरता से विचार करना है।

मनुष्य की आतंरिक चेतना को जगाने के लिए बौद्धिक विकास के साथ चारित्रिक विकास की ओर ध्यान देना नितांत आवश्यक है। चरित्र व्यक्ति का भी होता है, समाज का भी होता है और राष्ट्र का भी होता है, इसी प्रकार राष्ट्रीय चरित्र से व्यक्ति प्रभावित होता है। जिस राष्ट्र का कोई चरित्र नहीं होता, उसके नागरिक चरित्रसंपन्न कैसेहोंगे?

चरित्र को प्रतिष्ठित करने में अणुव्रत ने अहम् भूमिका निभाई है। अणुव्रत एक आचार-संहिता का नाम है। वह लोक-जीवन में व्याप्त मानवीय दुर्बलताओं को परिष्कृत कर स्वस्थ जीवन जीने की दिशा देता है। कुछ लोग पूछते हैं कि पिछले वर्षों में अणुव्रत ने क्या किया? अणुव्रत को जो काम करना था, उसने वही काम किया। उसने देश में एक नयी विचारधारा का प्रवाह बहाया, उपासना में उलझे हुए मनुष्य से चरित्र की पहचान करवाई और एक सार्वभौम धर्म या मानव-धर्म को उजागर किया।

अणुव्रत ने जाति, प्रांत, भाषा, धर्म, रंग और लिंग आदि भेदजनक सीमाओं में सिमटे हुए धर्म को विस्तार के लिए व्यापक धरातल दिया। उसने धर्म के नाम पर चलने वाली स्वार्थसिद्धि पर प्रहार किया और परमार्थ तत्त्व को खोजने का दृष्टिकोण दिया।

अणुव्रत ने धर्म की प्रासंगिकता को त्रैकालिक प्रमाणित करते हुए उसे असांप्रदायिक या चरित्र प्रधान धर्म के रूप में विकसित होने का अवसर दिया। किसी भी संप्रदाय में रहता हुआ व्यक्ति अणुव्रती बन सकता है। किसी भी जाति या भाषा से जुड़ा हुआ व्यक्ति अणुव्रतों की साधना कर सकता है। किसी भी रूप में परमात्मा को मानने वाला व्यक्ति अणुव्रत का आचरण कर सकता है और परमात्मा की सत्ता में

www.terapanthinfo.com

विश्वास करने वाला व्यक्ति भी अणुव्रती बनने का गौरव अर्जित कर सकता है।

अणुव्रत ने सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता, असांप्रदायिकता आदि सार्वभौम तत्त्वों की धारा बहाई, युग-चेतना को झकझोरा, हजारों-हजारों व्यक्तियों को उस धारा में बहने के लिए आमंत्रित किया।

राष्ट्रीय चेतना के विकास हेतु जितने प्रयत्न आज हो रहे हैं उनकी पृष्ठभूमि में चरित्र का बल हो तो सब काम अच्छे ढंग से आगे बढ़ सकते हैं। चरित्र को गौण करके कितना ही विकास कर लिया जाए, समस्या ज्यों की त्यों खड़ी रहेगी। शिक्षा के क्षेत्र में उभरने वाली समस्या का कारण भी चरित्रहीनता है। शिक्षा नीति में किन तत्वों का समावेश जरूरी है, इस संदर्भ में शिक्षाशास्त्री अपनी-अपनी अनुशंसाएं प्रस्तुत कर रहे हैं। उन अनुशंसाओं में चरित्रबल को पुष्ट करने या आंतरिक व्यक्तित्व का निर्माण करने का लक्ष्य मुख्य रहेगा, तभी शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य भीतरी चेतना का जागरण, सार्थक हो सकता है। क्योंकि मनुष्य का चरित्र सही है तो सब कुछ सही है। चरित्र सो जाएगा तो सब कुछ सो जाएगा। अणुव्रत आंदोलन शिक्षा में चरित्र के समावेश की अनुशंसा पर पहले भी सजग था, आज भी सजग है।

नैतिकता का प्रशिक्षण

हिंसा, संग्रह और अनैतिक मूल्यों के प्रति जिस वेग से आस्था बढ़ रही है, उसी वेग से यदि नैतिक अभियान ने काम नहीं किया तो क्या दीर्घकालीन परिणाम की आशा की जा सकती है? यह प्रश्न बड़ी तत्परता से पूछा जाता है। किन्तु इस का उत्तर उतनी तत्परता से नहीं दिया जा सकता।

आज अधिकांश लोग अपने-अपने स्वार्थ की सिद्धि में संलग्न हैं। स्वार्थ सिद्धि को बुरा भी नहीं कहा सकता। किन्तु दूसरों के स्वार्थों को विघटित कर अपना स्वार्थ साधना निश्चित ही बुरा है और बहुत बुरा है। समाज में इस बुराई के प्रति घृणा उत्पन्न हुए बिना नैतिकता के भाग्य के बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

मैं नैतिकता को व्यवस्थाओं व विधि-विधानों के साथ नत्थी नहीं करता मैं उसे व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय की अच्छाई के साथ जोड़ता हूँ। जो व्यक्ति अपना हित साधने के लिए दूसरों का नुकसान नहीं करता, दूसरों के प्रति क्रूर व्यवहार और विश्वासघात नहीं करता, उसे मैं नैतिक आदमी मानता हूँ।

अणुव्रत संस्कार निर्माण का अभियान है। एक आदमी सँकरी पगडंडी द्वारा पहाड़ पर सीधा चढ़ सकता है। पर हजारों-हजारों लोग और वाहन वैसे नहीं चढ़ सकते। सड़क बनाने में समय लगता है पर उस के बनने पर एक बच्चा भी पहाड़ की चोटी पर पहुँच सकता है। हमें निष्ठा के साथ काम करना चाहिए। सफलता की उतावली में यथार्थ को नहीं भुला देना चाहिए। मैं यह चाहता हूँ कि अभियान के प्रयत्न तीव्र हों, सघन हों और व्यवस्थित हों।

इधर-उधर बिखरी ईटों से मकान नहीं बनता। मकान बनाने के लिए उन्हें व्यवस्थित ढंग से जाँचना होता है। अणुव्रत का भावी कार्यक्रम इन्हीं तथ्यों पर आधारित है। अणुव्रत अभियान को तीव्र करने के लिए जनता तक पहुँचना व उसे नैतिकता से होने वाले लाभ समझाना जरूरी है। ''तुम्हें नैतिक बनना चाहिए'' यह उपदेश है। इससे बहुत सफलता की आशा नहीं की जा सकती। आप नैतिकता और अनैतिकता के परिणामों का विश्लेषण कीजिए। जनता किस ओर आकृष्ट होती है, यह उसी पर छोड़ दीजिए। यदि आपकी शैली समर्थ है और आप उस के हृदय तक पहुँच सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि वह नैतिकता के लाभ से प्रभावित न हो। सूत्र की भाषा में नैतिकता का उपदेश उस (नैतिकता) के विकास का मंद प्रयत्न है और नैतिकता का प्रशिक्षण उस के विकास का तीव्र प्रयत्न है।

नैतिक जीवन जीना चाहिए, यह शुभ संकल्प हैं। जिस आदमी में थोड़ा सा भी सत् का अंश है, वह संकल्प को स्वीकार करना चाहेगा। किन्तु नैतिक जीवन जीने में आने वाली कठिनाइयों को पार करने का मार्ग न सूझे तब आदमी नैतिक मार्ग से दूर हट जाता है।

अणुव्रत का मार्ग यह नहीं है कि नैतिक बनने के लिए काम छोड़ दिए जाएँ। काम छोड़ देने पर नैतिक और अनैतिक बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। अपना काम करते हुए आदमी अनैतिक आचरण न करे बस यही अणुव्रत का ध्येय है।

एक से सबका और सबसे एक का हित वहीं हो सकता है, जहां अहिंसा है।

● आचार्य तुलसी ●

संप्रसारक :

एम.जी. सरावगी फाउंडेशन

41/1-सी, झावूतल्ला रोड, बालीगंज-**कोलकाता**-700019

● दूरभाष : 22809695

www.terapanthinfo.com

अहिंसा का द्वार

आचार्य महाप्रज्ञ

एक आदमी ने बहुत बड़ा मकान बनाया, उसमें दस-बारह कमरे और एक हॉल था, पर उसमें भीतर जाने का कोई दरवाजा नहीं था, किसी ने कहा "बिना दरवाजे के भीतर प्रवेश कैसे करोगे?" कोई उत्तर नहीं मिला।

कोई भी आदमी, जो भीतर जाना चाहता है, उसे पहले दरवाजे की बात सोचनी होगी। बिना दरवाजे के भीतर प्रवेश करना सम्भव नहीं होगा। हिंसा का भी अपना दरवाजा होता है और अहिंसा का भी दरवाजा होता है। धर्म का भी अपना दरवाजा होता है। प्रवेश करने के लिए पहला द्वार जरूरी है, फिर भीतर की बात आती है। हम पहले दरवाजे की बात करें, अहिंसा प्रशिक्षण में अभी दरवाजे की बात हो रही है। अहिंसा का दरवाजा क्या है?

स्थानांगसूत्र में धर्म के चार द्वार बतलाये गये हैं खंती, मुत्ती, अज्जवे, मुद्दवे, धर्म का पहला दरवाजा है क्षांति, सहिष्णुता या सहनशीलता, दूसरा दरवाजा है लोभ का नियंत्रण, इच्छा का नियंत्रण, तीसरा दरवाजा, है आर्जव, ऋजुता, चौथा दरवाजा है मृदुता या कोमल व्यवहार, विनम्र व्यवहार, इन चार धर्म के द्वार से ही प्रवेश करना पड़ेगा। क्रम से ये चार दरवाजे उसे लाँघने होंगे, तब कहीं जाकर वह भीतर प्रविष्ट हो सकेगा।

पहला दरवाजा है क्षांति या क्षमा का दरवाजा, क्षमा का मतलब है सहन करने की शक्ति। समय-समय पर क्षमा याचना करते हैं, खमतखामना करते हैं, पूछा जाये कि क्षमा का अर्थ क्या है? सीधा उत्तर होता है दूसरे की गलती को माफ कर देना, भुला देना, कह देना कि क्षमा करता हूँ, किंतु यह केवल शाब्दिक अर्थ हुआ। इसके भीतर बहुत गहरे में जुड़ी हुई है सहिष्णुता या सहनशीलता, जो सहन करना नहीं जानता, उसके लिए क्षमा का कोई अर्थ नहीं है, वह दूसरों के साथ किसी तरह के सम्बंध का निर्वाह भी नहीं कर सकता, दूसरों के साथ रहकर वह शांतिपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। वह स्वयं अशांत रहेगा और दूसरे को अभी अशांत बनाये रखेगा।

वर्तमान में हिंसा बढ़ी है, इसका तात्पर्य सीमा पर होने वाली हिंसा नहीं है। आतंकवाद और उग्रवाद से होने वाली हिंसा नहीं है। इसका तात्पर्य घर, परिवार, समाज से जुड़ी हुई हिंसा से है। कलह, लड़ाई-झगड़ा, तू-तू-मैं-मैं, हाथापाई आदि से है। गाली-गलौज, अपशब्दों का उच्चारण, चुनौती, धमकी, चेतावनी आदि भी हिंसा के ही रूप हैं। इसका कारण क्या है? कारण एक ही है असहिष्णुता हम सहन करना नहीं जानते, सहिष्णुता जीवन की सबसे बड़ी विद्या और सबसे बड़ी कला है।

हमें अहिंसा की कला पर विचार करना है। अहिंसा की कला हमारे जीवन को पवित्र बनाने वाली कला है, हमारे जीवन को समग्र और सम्पूर्ण बनाने वाली कला है। इस कला का प्रमुख और पहला द्वार है क्षमा। सहन करना सीखो, सहन किसे करें? सबसे पहले अपने आपको सहन करना है, आदमी के मस्तिष्क में बहुत सारे नकारात्मक विचार आते हैं, कभी-कभी तो आत्महत्या और परहत्या की सीढ़ी पर भी आदमी कदम रख देता है।

ऐसे नकारात्मक विचारों का कारण यही है कि आदमी अपने आपको सहन करना नहीं जानता। जो सहन करना जानता है, वह कभी अपने जीवन को समाप्त करने की बात नहीं सोचेगा, वह सोचेगा कि समस्या का समाधान कैसे करें? वह निंदा को भी सहन करेगा, प्रशंसा को भी सहन करेगा, मान को भी सहन करेगा, अपमान को भी सहन करेगा।

विषम परिस्थितियों में, द्वंद्वात्मक स्थितियों में संतुलन बनाये रखना धर्म की और अहिंसा की बहुत बड़ी साधना है, ऐसा कब सम्भव हो पाता है? कोई पद मिला, कोई प्रतिष्ठा मिली कि आदमी का दिमाग सातवें आसमान पर पहुँच जाता है। थोड़ा अपमान, थोड़ा तिरस्कार मिला कि सीधा पाताल में चला जाता है। धरती पर पैर जमाये रखने वाले आदमी बहुत कम देखने को मिलते हैं। धरती पर वही रह सकता है, जो संतुलन की साधना जानता है, संतुलन वही बनाये रख सकता है जिससे सहन करने की शक्ति है।

अपमान सहन करना कठिन है। सम्मान को सहन करना उससे भी ज्यादा कठिन बात है। अपमान होता है तो आदमी की आंखें बंद हो जाती हैं, सम्मान होता है तो आदमी की आँखें इस तरह विस्फरित हो जाती हैं कि अपने अतिरिक्त उसे और कोई दूसरा दिखायी ही नहीं देता। वह व्यक्ति, जिसने अहिंसा के प्रथम द्वार में प्रवेश किया है, जिसने क्षमा के अर्थ को गहराई से समझा है, वह व्यक्ति सचमुच अहिंसा के भवन में प्रवेश कर सकता है। सहन करने की मजबूती हो तभी क्षमा का अर्थ होगा, मेरे विचार से आज के युग में सबसे बड़ा कोई करणीय धर्म है तो वह क्षमा धर्म है। सबसे पहले क्षमा की साधना करना सीखे, सहिष्णुता केवल किसी कॉलोनी, किसी जाति, सम्प्रदाय, कौम की समस्या नहीं है, पूरी दुनिया की समस्या है और आज के विद्यार्थी वर्ग की तो यह प्रमुख समस्या है।

शुरू से ही सहिष्णुता की शिक्षा नहीं दी गयी, सहनशीलता का अभ्यास

www.terapanthinfo.com

नहीं कराया गया, जीवन की वास्तविकता या सच्चाई से जिसका कभी सामना नहीं हुआ, स्वावलम्बन की जिसे शिक्षा नहीं मिली, 'पैसे के बल पर सब कुछ सम्भव है' यह जिसकी जिंदगी का मूल मंत्र रहा, वह कभी सहन करने की महत्ता को नहीं समझ सकता। हकीकत यह है कि सहन करने की कला जिसमें है, वह हजार अच्छाइयों को आत्मसात् कर लेगा, किंतु जिसमें यह कला नहीं है, वह हजार बुराइयों को गले लगा लेगा।

अहिंसा की, धर्म की बात करते समय सबसे पहले इस बात को प्रमुखता दी जाये कि क्षमा की कला को सीखना है। धर्मस्थान में जाना, सामायिक करना, उपासना करना है। दूसरे धार्मिक अनुष्ठान करना तभी सार्थक है, अगर मन में सहिष्णुता की भावना है, क्षमा की भावना है। धर्मस्थानों में धार्मिक क्रियाएं भी चले और साथ-साथ घर-परिवार में कलह-कदाग्रह भी चले तो फिर ऐसे दोहरे जीवन में अशांति और तनाव के अतिरिक्त कुछ और हासिल नहीं हो पायेगा।

प्रश्न होता है धर्म का असर क्यों नहीं दिखायी देता? यही प्रश्न एक बार एक महात्मा से भी किसी ने पूछा ''आज धर्म का असर क्यों दिखायी नहीं दे रहा है?''

महात्मा ने कहा ''तुम बताओ, राजगृह यहाँ से कितनी दूर है?''

''दौ सौ मी.,''

''तुम जानते हो?''

''हाँ, मैं जानता हूँ ''

''क्या तुम राजगृह का नाम लेते ही राजगृह पहुँच गये?'' महात्मा ने पूछा।

''पहुँचूँगा कैसे? अभी तो मैं यहाँ आपके पास खड़ा हूँ राजगृह के लिए प्रस्थान करूँगा, तो कई दिन चलने के बाद वहाँ पहुँचूँगा।''

महात्मा ने कहा ''तुम्हारे इस उत्तर में ही मुझसे पूछी गयी बात का उत्तर छिपा है। तुम राजगृह को जानते हो, किंतु जब तक वहाँ के लिए प्रस्थान नहीं करोगे, राजगृह नहीं पहुँच पाओगे। यही बात धर्म मार्ग के लिए भी है, धर्म को जानते हैं, पर जब तक उसके नियमों पर नहीं चलोगे, उस पर आचरण नहीं करोगे, तब तक धर्म का असर कैसे होगा?''

धर्म के उपादानों की उपेक्षा की गयी तो धर्म कभी भी आचरण में नहीं उतरेगा, धर्म के मूल कारकों में एक है क्षमा और सहनशीलता। यह एक बहुत बड़ी शक्ति है, जिसमें यह शक्ति नहीं है, वह बहुत बड़ा तांत्रिक भी अगर हो गया तो एक दिन बुरी मौत मर जायेगा। जिन लोगों में सहन करने की शक्ति नहीं है, उनका बुढ़ापा बहुत दुःख में व्यतीत होता है, जब तक शरीर में शक्ति है, युवावस्था है, हाथ-पैर काम कर रहे हैं, तब तक तो सब सहन करते जाते हैं, किंतु जैसे ही शरीर की शक्ति जवाब देती है, खटिया की शरण और परवशता की स्थिति बनती है, उसकी उपेक्षा शुरू हो जाती है, शरीरबल जवाब दे गया, किंतु जबान और तेवर वैसे ही तीखे रहे तो फिर दुःख भोगना ही है। इसलिए समय के साथ स्वयं में बदलाव लाना जरूरी हो जाता है। अपेक्षा तो यह है कि जीवन में प्रारम्भ से अवस्था के साथ-साथ अपने स्वभाव और वृत्तियों में भी परिवर्तन शुरू कर देना चाहिए।

सुख से जीने का सबसे बड़ा मंत्र है अहिंसा। इसे आज बहुत स्थूल दृष्टि से देखा जा रहा है, अहिंसा जीवन की सबसे बड़ी कला है, उसका पहला सूत्र, जिसकी साधना हर व्यक्ति को करनी चाहिए, वह है सहिष्णुता की शक्ति का विकास। प्रश्न होता है क्या अन्याय को भी सहन किया जाये? मैं यह तो नहीं कहता कि अन्याय को सहन करें, पर अन्याय के प्रतिरोध में दूसरा अन्याय तुम न करो, इतना विवेक तो होना ही चाहिए। कोई गाल पर एक चाँटा जड़ दे तो उसे सहन करना कायरता और कमजोरी होगी, किंतु एक चाँटे के उत्तर में दो घूँसे जड़कर आगे के लिए तुमने लड़ाई की पृष्ठभूमि मजबूत कर दी तो यह कोई अच्छा काम नहीं होगा। सहन करने का भी एक विवेक होता है। हम सहन करें और प्रतिकार आवश्यक हो तो वह भी विवेकपूर्वक होना चाहिए, जो प्रायः नहीं होता, किसी भी झगड़े की बुनियाद को देखा जाये तो कोई बहुत बड़ा कारण नहीं होता, किंतु उसका प्रतिकार विवेकपूर्ण न होने के कारण वह बहुत बड़े झगड़े या कभी-कभी तो दंगे का रूप ले लेता है।

असहिष्णुता का कारण है क्रोध और क्रोध का कारण है अहंकार। जितना प्रबल अहंकार, उतना ही प्रबल क्रोध, क्रोध अपने आप नहीं आता। उसका कारण है अहंकार, अहंकार के कारण क्रोध पैदा होता है। अहंकार आदमी को असहिष्णु बनाता है और भी तरह-तरह की समस्या पैदा करता है। क्रोध असहिष्णु बनाता है, अहंकार असहिष्णु बनाता है। लोभ और घृणा का भाव भी मनुष्य को असहिष्णु बनाता है।

अहिंसा का सिद्धांत बहुव्यापक है, इसका दर्शन, बहुत बड़ा दर्शन है, लोग अहिंसा को केवल 'मत मारो' तक ही सीमित कर देते हैं, अहिंसा के लिए लोग हिंसा भी बहुत करने लग जाते हैं, जब तक हम अहिंसा के व्यापक दर्शन को नहीं समझेंगे, तब तक हिंसा का सिद्धांत व्यावहारिक नहीं बनेगा और उपयोगी भी नहीं बनेगा, हमें अहिंसा की व्यावहारिकता को भी समझना है।

आज समाज में दहेज को लेकर जो समस्याएं पैदा हो रही हैं, उनका एक कारण यह भी है कि अहिंसा के अर्थ को ठीक से समझा नहीं गया, दहेज जैसी छोटी बात को लेकर किसी निर्दोष प्राणी को यातना देना या दहेज की विभीषिका को ध्यान में रखकर किसी अजन्मे कन्या भ्रूण की हत्या कर देना बड़ा जघन्य कृत्य है, इस तरह का अपराध करने वाले को धार्मिक तो दूर की बात, मनुष्य कहने में भी लज्जा का अनुभव होता है। हमने अहिंसा के शरीर को तो पकड़ा, किंतु उसकी आत्मा को, उसके मर्म को नहीं पकड़ा।

www.terapanthinfo.com

अनेक युवतियाँ हमारे पास आयीं, उनकी आँखों में आँसू थे, हम उनके दुःख को तत्काल समझ नहीं सके, पूछने पर उन्होंने बताया ''हमने दबाव, भय और प्रताड़ना से विवश होकर गर्भपात जैसा क्रूर कार्य किया और अब इतना अनुताप हो रहा है कि उसे शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं लग रहा है। हमने ऐसे कृत्य किये और अब आत्मा काँप रही है, स्वयं को ही धिक्कार रही है, आप हमें प्रायश्चित दें।''

अब प्रायश्चित किसका दें? और दें भी तो क्या दें? एक पंचेंद्रिय प्राणी की हत्या और ऐसे प्राणी की हत्या जिसका कोई दोष नहीं, कोई अपराध नहीं, जो किसी भी प्रकार से अपनी पीड़ा को व्यक्त नहीं कर सकता, उसे बड़े क्रूर तरीके से मार देना, ऐसा अपराध है, जिसका कोई प्रायश्चित नहीं हो सकता।

हम कष्ट सहन करना जानते हैं, क्योंकि हम अहिंसा व्रत का पालन करते हैं। **जो अहिंसा व्रत का पालन करेगा, उसे कष्ट सहन करने की आदत डालनी होगी। इसके साथ -साथ यह भी कहना चाहूँगा कि जो भी राष्ट्र विकास करना चाहता है, उसे कष्ट सहने के लिए तैयार रहना होगा, जो कष्ट सहना नहीं जानता या उसके लिए तैयार नहीं है, उसे विकास का सपना नहीं देखना चाहिए। हर बड़े काम के लिए कष्ट उठाना पड़ता है, जोखिम उठाना पड़ता है। सांस्कृतिक मूल्यों का विकास, राष्ट्रीय और चारित्रिक मूल्यों का विकास ये सब महलों में बैठकर सुख भोगते हुए नहीं किये जा सकते।** इसे तो झोपड़ियों में रहकर, कष्ट सहकर ही किया जा सकता है, इसलिए अहिंसा के भव्य प्रासाद में प्रवेश करना है, अहिंसा को जीना है तो सबसे पहले उसके दरवाजे में प्रवेश करें, राजस्थानी भाषा में यह सतपोलिया यानी सात द्वारों वाला मकान है, अहिंसा के चार दरवाजे हैं, पहला क्षांति या सहिष्णुता, दूसरा आकिंचन्य या अनासक्ति, तीसरा है सरलता और चौथा है मृदुता, कोमलता, करुणा और संवदेनशीलता, इन चारों से गुजरने के बाद ही अहिंसा के साक्षात दर्शन हो सकते हैं, हमारी मुश्किल यह है कि बिना इन दरवाजों में प्रवेश किये हम अहिंसा तक पहुँचना चाहते हैं, ऐसी स्थिति में सफलता कैसे मिले?

सब लोग इन बातों पर चिंतन करें और इन दरवाजों में प्रवेश करने की अर्हता और योग्यता अर्जित करने का प्रयत्न करें। जब तक यह प्रवेशपत्र नहीं पा लेते, अहिंसा तक पहुँचने की आशा न करें। शांतिपूर्ण जीवन और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, जिनकी आज पूरे विश्व में चर्चा है, वह सम्भव नहीं हो पा रहा है, क्योंकि क्षांति के दरवाजों में प्रवेश नहीं हो पा रहा है। बिना अर्हता और योग्यता के सीधे प्रवेश करना चाहते हैं, यह संभव नहीं है, अगर प्रवेश द्वार में प्रविष्ट होने की योग्यता और क्षमता हासिल हो जाये तो एक नये विश्व की कल्पना, जिसमें शांति होगी, सहिष्णुता होगी, सामंजस्य होगा, सम्भव हो सकेगी।

राष्ट्र चिन्तन

◆ राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद के मामले में उच्च न्यायालय का फैसला आने की उम्मीद है। यह कहने की जरूरत नहीं कि इस निर्णय को पूरा सम्मान मिलना चाहिए। ठीक उसी समय, हमें इस बात को भी याद रखना जरूरी है कि यह निर्णय न्यायिक प्रक्रिया का एक कदम होगा। इस फैसले के साथ इस मुद्दे का तब तक निश्चित तौर पर अंत नहीं होगा, जब तक कि सभी पक्षों द्वारा इसे स्वीकार न कर लिया जाए। यदि किसी भी पक्ष को यह महसूस होता है कि इसके लिए अभी और न्यायिक प्रक्रिया की जरूरत है तो वैधानिक हल उपलब्ध हैं और उनका सहारा लिया जा सकता है। इसे ध्यान में रखते हुए भारत के सभी वर्गों के लोगों के लिए इस फैसले के बाद धैर्य और शांति कायम रखना जरूरी होगा। लोगों के किसी वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग को उकसाने का कोई प्रयास नहीं किया जाना चाहिए अथवा ऐसी कोई बात नहीं की जानी चाहिए जो दूसरों की भावनाएं आहत करें।

डॉ. मनमोहन सिंह, *प्रधानमंत्री*

◆ बैंक को चाहिए कि वे अपना फाइनेंशयल इनक्लूजन प्लान समय से पहले पूरा करने को विशेष तवज्जो दें ताकि आम लोगों को बैंकों की सेवाएं हासिल हो सकें। फाइनेंशियल इन्कलूजन प्लान के तहत बैंक अपने-अपने क्षेत्रों में अब तक बैंकिंग सेवाओं से अछूते क्षेत्रों तक अपनी सेवाएं पहुंचाने का काम कर रहे हैं। इसके साथ ही प्राथमिकता क्षेत्र यानी कृषि, लघु एवं मझोले उद्योगों और स्वरोजगार को बढ़ावा दे रहे हैं। बैंकों द्वारा वर्ष 2013 तक देश में 15000 बिजनेस कॉरेसपांडेंट नियुक्त करने की योजना है। लगभग 141 चुनिंदा गांवों में बैंकों के सहयोग से सौर ऊर्जा सिस्टम स्थापित किए जाएंगे।

प्रणव मुखर्जी, *वित्त मंत्री*

◆ भ्रष्टाचार को उजागर करने वालों की हत्या करने की खबरें बेहद पीड़ादाई हैं। सरकार संसद के अगले सत्र में भूमि अधिग्रहण विधेयक, खाद्य सुरक्षा विधेयक और आम आदमी को फायदा पहुंचाने के लिए आयकर कानून में बदलाव की तैयारी कर रही है। यह जरूरी है कि विकास का फायदा वंचित वर्गों तक पहुंचे और उनकी आवाज सुनी जाए।

सोनिया गांधी, *अध्यक्षा : कांग्रेस*

www.terapanthinfo.com

विष क्या? अमृत क्या?

आचार्य महाश्रमण

आदमी के मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि विष क्या है और अमृत क्या है? विष और अमृत बहुत प्रसिद्ध शब्द हैं। विष से आदमी डरता है और उससे दूर रहना भी चाहता है। अमृत सबको प्रिय लगता है। इसका आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में बहुत सटीक समाधान प्रस्तुत किया है 'कोहो विसं किं अमयं अहिंसा'

क्रोध एक प्रकार का विष है, जो मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को समाप्त कर देता है और स्वास्थ्य पर भी असर ला सकता है। और तो क्या, व्यक्ति को भी समाप्त कर सकता है। मैंने बचपन में एक प्रसंग सुना था कि आक्रोश किस प्रकार विष पैदा करता है। एक छोटा बच्चा, जो बिलकुल स्वस्थ था, अचानक उसकी मृत्यु हो गई। अनुसंधान के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया कि जिस समय बच्चा माँ का स्तनपान कर रहा था, उस समय माँ तीव्र आक्रोश में थी। जिसके कारण माँ का दूध विषाक्त हो गया। उस आक्रोश की स्थिति में बच्चे ने दुग्धपान किया और अल्प समय में ही उसकी मृत्यु हो गई। यह घटना कितनी यथार्थ है, मैं नहीं जानता। किन्तु एक निष्कर्ष अवश्य है कि आवेश अथवा आक्रोश एक ऐसा विष है जो आदमी को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर अस्वस्थ बना देता है। ऐसी स्थिति में यदि अहिंसा का प्रयोग होता है, प्रेम व मैत्री का प्रयोग होता है तो वह अमृत का काम करती है। आज दुनिया में अहिंसा है तभी लोग जीवित हैं। यदि अहिंसा न हो तो लोगों का जीवित रहना भी मुश्किल हो सकता है। जहां हिंसा, आक्रोश और द्वेष की अग्नि प्रज्वलित होती है, वहां स्थितियां भी कष्टदायक बन जाती हैं और शान्ति भी समाप्त हो जाती है। सन् 2002 में जब गुजरात में गोधरा-काण्ड हुआ, आचार्य श्री महाप्रज्ञ उन दिनों गुजरात की यात्रा कर रहे थे। उस समय एक भयंकर स्थिति बन गई थी। गोधरा-काण्ड के बाद जो प्रतिशोध की भावना उभरी और लोगों में जो आवेश व आक्रोश का भाव उभरा, उसने कितना अप्रिय नजारा दिखाया? कितने-कितने लोग मर गए और कितने-कितने लोग दहशत में चले गए? क्या वह कोई कम विष था? उस हिंसा के बाद जो अहिंसा का वातावरण बना, उससे शान्ति व्याप्त हो गई और वह विष अमृत में बदलने लगा।

दूसरा प्रश्न किया गया कि दुनिया में शत्रु कौन है और अपना मित्र कौन है? समाधान की भाषा में कहा गया 'माणो अरी किं हियमप्पमाओ' अहंकार शत्रु है और अप्रमाद मित्र है। दूसरे शत्रु नुकसान करें या न करें, किन्तु आदमी में अहंकार है तो वह अपना नुकसान कर लेता है। अहंकार एक ऐसा भावात्मक दोष है जो आदमी को ऊपर उठने से बाधित कर देता है। आदमी की यह दुर्बलता है कि वह थोड़ा-कुछ पाकर ही अहंकार में आ जाता है। थोड़ा ज्ञान मिल जाए, थोड़ा धन मिल जाए और सत्ता हाथ में आ जाए फिर तो कहना ही क्या? राजस्थानी साहित्य में ठीक ही कहा गया भरियो तो छलकै नहीं, छलकै सो आधा।

एक घड़े में यदि पानी पूरा भरा हुआ है तो वह छलकता नहीं है। जिसके पास थोड़ा है, अल्प है, उसे ही अहंकार सताता है। जिसके पास सब-कुछ है, उसके पास अहंकार नहीं ठहरता। जब आदमी को यथार्थ का भान हो जाता है तब उसके अहंकार का मद उसी प्रकार उतर जाता है जैसे कुनैन की गोली लेने से मलेरिया बुखार उतर जाता है। इस प्रकार अहंकार एक शत्रु है और शत्रु भी इसलिए कि वह विकास में बाधा पहुंचाता है। अप्रमाद मित्र इसलिए है कि वह आदमी को विकास के पथ पर अग्रसर करता है।

तीसरा प्रश्न किया गया कि दुनिया में भय का स्थान कौन-सा है और शरण का स्थान कौन-सा है? इसका सुंदर समाधान दिया गया 'माया भयं किं सरणं तु सच्चं' माया भय है और सत्य शरण है। जो आदमी छलना, वंचना करता है, वह भयभीत रहता है। मायावी आदमी अपनी एक बात को छुपाने के लिए नया झूठ बोलता है, माया का नया जाल गूंथता है और सोचता है कि कहीं मेरी बात प्रकाशित न हो जाए। इस प्रकार माया में भय का वातावरण बना रहता है। जहां सच्चाई है, स्पष्टता है, वहां निर्भीकता रहती है। सत्यवादी आदमी के जीवन में परेशानियां तो आ सकती हैं, संघर्ष आ सकते हैं, किन्तु उसके पास इतना मनोबल होता है, आत्मबल होता है कि वह परास्त नहीं होता। सत्य की शरण में रहने वाला व्यक्ति पूर्णतया सुरक्षित रह सकता है। इसलिए ठीक कहा गया कि माया भय का स्थान है और सत्य शरण का स्थान है।

चौथा प्रश्न युगल हुआ कि दुनिया में दुःख क्या है और सुख क्या है? उत्तर मिला 'लोहो दुहं किं सुहमाहु तुट्ठी' लोभ दुःख है और संतोष सुख है। जहां अतिकामना है, लालसा है, वहां जब कामनाएं पूरी नहीं होतीं तो दुःख पैदा हो जाता है। कामना के भी तीन स्तर हो सकते हैं जघन्य, मध्यम और उत्तम। जघन्य स्तर की कामना वह होती है जिसमें आदमी यह भावना करता है कि

www.terapanthinfo.com

अमुक व्यक्ति का बुरा हो जाए, अमुक व्यक्ति का व्यापार चौपट हो जाए, अमुक परिवार में सब बीमार हो जाएं, अस्त-व्यस्त हो जाएं आदि। मध्यम स्तर की कामना में आदमी भौतिक आकांक्षा करता है। वह सोचता है, मुझ धन मिल जाए, संतान मिल जाए, कोई पद मिल जाए। मध्यम स्तर की कामना में व्यक्ति दूसरों का अनिष्ट नहीं चाहता, किन्तु अपने लिए, अपने परिवार के लिए भौतिक पदार्थों की इच्छा करता है। उत्तम स्तर की कामना वह होती है जिसमें व्यक्ति आत्मिक विकास चाहता है। वह भावना करता है कि मेरे में मैत्री का विकास हो, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थ भावना का विकास हो। आदमी कामना भी करे तो उत्तम स्तर की करे। वास्तव में तो जब कामनाएं समाप्त हो जाती हैं, आदमी को परम सुख प्राप्त होता है।

जिस व्यक्ति के जीवन में अहिंसा, अप्रमाद, सत्य और संतोष आ गया अथवा इनके आधार पर जो अपनी जीवनशैली का निर्माण करता है, उसका वर्तमान जीवन तो अच्छा बनता ही है, भावी जन्म भी अच्छा बनने की संभावना की जा सकती है।

◆ लघुकथा

आतंक का कहर

मुनि सम्बोध कुमार

घड़ी की सुई में कोई एक बज रहे थे। गर्मी के तेवर तीखे होते जा रहे थे। उसे दमा की शिकार अपनी बुढ़ी मां के लिए पंप लाने गये हुए करीब दो घंटे हो चुके थे और यहां माँ की हालत बिना पंप के लगातार बिगड़ती जा रही थी, सांसे उखड़ी जा रही थी और घर के बाहर अजीब-सा शोरगुल था। न जाने लोग इतने बदहवास होकर क्यूं भाग रहे थे? लेकिन वो पपराई आंखे सिर्फ अपने जिगर के टुकड़े को तलाश रही थी। बार-बार हर बार निगाहें सड़क पर और दिल से एक ही मन्नत निकल रही थी कि हे भगवान्। बेटे के आने से पहले कही मौत झोली में ना डाल देना।

उस ममता के इंतजार को क्या पता था कि उसके लाडले को बेरहम नकापोश आंतकवादियों ने घंटे भर पहले ही गोलियों से भुन दिन और अपनी प्यारी मां के लिए लेकर जा रहा पंप मुट्ठि में बंद किए हुए हमेशा-हमेशा के लिए आंखें मूंदते हुए वह फड़फड़ाते होठों से बस इतना सा कह पाया 'मां मुझे माफ करना।'

शहर का चप्पा-चप्पा दहशत के खौफ में डूब गया। कानून के पास अनगिनत लाशों के पोस्टमार्टम और शिनाख्त के बाद उनके रिश्तेदारों को सुपुर्द करने और शहर में रेड अलर्ट का फरमान जारी करने के सिवा कोई चारा नहीं था।

इससे पहले कि पुलिस चिथड़े-चिथड़े में तब्दील हो चुके उस बेटे के जिस्म को उस ममता की मूरत को सुपुर्द करते, दमा की बीमारी ने उसकी जिन्दगी भी लील ली। और अवाम ने डबडबाई आंखों से मां और बेटे को साथ-साथ आखिरी विदाई दी।

पानी और गिलास

मेरे पास नहीं है एक गिलास
किसी को कैसे पिलाऊँ पानी?
मैं चाहता हूँ मेरे पास भी हो
एक गिलास पिलाने को पानी
तभी न पिला पाऊँगा पानी किसी को
पर देखता हूँ नहीं है पानी हर गिलास में
मैं इतना ज़रूर चाहता हूँ न हो गिलास
तो भी पानी ज़रूर मेरे पास हो
पानी प्यास को करता है शांत
ओक से ही चाहे पीया-पिलाया जाए पानी
गिलास नहीं बुझाता है प्यास
बिना पानी का गिलास भड़काता है
और अधिक प्यास
पानी फिर भी ढाल लेता है अपना आकार
पानी होगा तो ढल जाएगा गिलास भी
गिलास नहीं बदल सकता आकार
न ही पैदा कर सकता है पानी
ज़रूरी है पहले पानी की खोज
पानी होगा तो
अपने आप हो जाएगा गिलास
पानी हो और हथेली हो
बनाने को ओक जो
ज़रूरी भी नहीं है गिलास
गिलास होगा तो क़ीमत नहीं हथेली की
क़ीमत नहीं हथेली की तो
क़ीमत नहीं आदमी की भी
गिलास से नहीं
क़ीमत आदमी की है पानी से ही
गिलास क़ीमती है तो
अलग करता है आदमी से आदमी को
बनाता है छोटा-बड़ा आदमी को
क़ीमती गिलास
आदमी और पानी दोनों की क़ीमत
कम करता है गिलास
पानी और आदमी के बीच
फालतू चीज़ है गिलास
पर बेहद ज़रूरी है आदमी
पानी बेशक न भी हो।

■ **सीताराम गुप्ता**
ए.डी.-106-सी,पीतमपुरा,
दिल्ली-110034

www.terapanthinfo.com

तुलसी के सपनों का महिला समाज

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

भारतीय नारी की प्रतिमा एक आदर्श नारी के रूप में उकेरी हुई प्रतिमा है। वह शक्ति, समृद्धि और बुद्धि की संवाहिनी के रूप में प्रसिद्ध है। उसके इन तीनों रूपों की दुर्गा, लक्ष्मी एवं सरस्वती के रूप में पूजा होती है। निःस्वार्थ त्याग, सहज समर्पण, जागृत विवेक, निश्छल ममता और सचेतन सहिष्णुता आदि उसके ऐसे गुण हैं, जिनसे अभिमंडित होकर वह अपनी चारित्रिक आभा को और अधिक प्रखर बना लेती है। उसके स्वभाव में मृदुता तैरती है और व्यवहार में विनम्रता झलकती है। ऐसी महिला घर की शोभा ही नहीं होती, घर को स्वर्ग बनाने वाली होती है। घर की व्यवस्था और सौन्दर्य भी महिला के कुशल और अनुभवी हाथों पर निर्भर है। शायद इसी बात से प्रेरित होकर लिखा गया है न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते। ईंट और चूने से, पत्थर और सीमेंट से बना हुआ घर वास्तव में घर नहीं कहलाता। घर है स्त्री का दूसरा नाम। इसका अर्थ हुआ कि जिस घर में गृहिणी सुघड़ है, वही घर व्यवस्थित घर का रूप ले सकता है। इस सत्य को वे पुरुष अच्छी तरह से महसूस करते है, जिनकी पत्नी कुछ समय के लिए मायके चली जाती है अथवा जिनको पत्नी का वियोग सहना पड़ता है। यदि वे पूरी ईमानदारी के साथ अपनी स्थिति का विश्लेषण करें तो उन्हें अपना समूचा घर अव्यवस्थित दिखाई देने लगता है।

घर और परिवार में स्त्री की उपस्थिति जितनी आवश्यक है, वह परिवार का उतना ही उपेक्षित पात्र है। पति या पुत्र सक्षम हो, आर्थिक दृष्टि से उनके सामने कोई समस्या न हो और उनके मन में पत्नी या मां के प्रति कर्त्तव्य भावना हो तब तो स्त्रियों को सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार मिल जाता है। अन्यथा भारतीय नारी इतनी बेचारी और निरीह बनकर रह जाती है कि परिवार में किसी के साथ उसकी भावनात्मक साझेदारी नहीं रहती। एक नौकरानी की भांति दिन भर मेहनत करना और उसके बदले में रोटी, कपड़े की व्यवस्था पा लेना, क्या एक औरत की यही स्थिति है? इतना भी तो सब औरतों को कहां नसीब होता है? जिनके पति या पुत्र की आय के स्रोत सीमित हैं, जो बच्चों की परवरिश और शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं कर सकते, उनके गुस्से का शिकार भी बहुत बार स्त्रियों को सहना पड़ता है। जो पुरुष शराबी, जुआरी तथा अन्य किसी दुर्व्यसन के आदी होते हैं, वे कुछ दिन तो स्त्री की व्यक्तिगत सम्पत्ति रुपयों और गहनों पर अपना हाथ साफ करते हैं। जब उसकी संपत्ति चुक जाती है अथवा वह कुछ सावधान हो जाती है तो उस पर हाथ और डंडा उठ जाता है। एक और अभावजनिक पीड़ा, दूसरी ओर पति द्वारा गालियों की बौछार एवं मारपीट। इतना सब कुछ सहते हुए भी अधिकांश स्त्रियां दूसरों के सामने मुंह नहीं खोलतीं। यदि उसकी किसी हितैषी को किसी स्रोत से स्थिति की जानकारी मिल जाती है और वह उसे अपने अधिकारों के लिए विद्रोह करने की बात कहती है तो वह उसे झटपट स्वीकार नहीं करती। शारीरिक एवं मानसिक यातनाएं झेलकर भी वह अपने पति को छोड़ना नहीं चाहती। पति द्वारा सताई गई ऐसी अनेक महिलाएं हैं, जो चाहती हैं कि उनकी अन्तरंग व्यथा कोई जान न पाए और वे अपनी जिन्दगी के बाकी दिन पति के साथ अनबोल रहकर भी एक छत के नीचे बिताएं। क्या कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति इस प्रकार की जिन्दगी को स्वीकार कर सकता है?

एक ओर आततायी पुरुषों का हिंसक मनोभाव, दूसरी ओर अपनी ही सजातीय महिलाओं का मारक ईर्ष्या भाव, तीसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों का कारा, चौथी ओर अन्धविश्वासों एवं कुसंस्कारों की चोट। चारों ओर से स्त्री जाति पर जो आक्रमण हो रहे हैं, उसकी मानसिकता क्षतविक्षत हो रही है। ऐसे समय में एक भारतीय सन्त के मन में करुणा का स्रोत बहा। करुणा किसी स्त्री विशेष के प्रति नहीं, उस समग्र परिवेश के प्रति, जो मानवीय मूल्यों की हत्या के लिए जिम्मेवार है अथवा उद्यत है। मूल्यहीनता की समस्या पर समाधान खोजने के लिए वे सन्त अणुव्रत अनुशास्ता के रूप में भारत के क्षितिज पर उभरे और धीरे-धीरे आचार्य तुलसी के रूप में अपनी पहचान बनाकर निर्विशेषण बन गए।

आचार्य तुलसी स्वप्नद्रष्टा आचार्य थे। उनकी आंखों में नित नए सपने तैरते रहते थे। भारतीय महिला के बारे में भी उन्होंने एक सपना देखा। कई दशकों पहले देखा हुआ वह सपना प्रारंभिक वर्षों में सपना ही बना रहा। कुछ वर्षों बाद उसने आकार लेना शुरू किया। आज उसका पूरा रेखाचित्र बन चुका है। उसे और अधिक सजाने-संवारने एवं रंग भरने का काम अब भी शेष है। जिस दिन वह सपना पूर्णता के साथ साकार होगा,

www.terapanthinfo.com

महिला जाति की छवि अपने आप उज्जवल हो उठेगी। आचार्य तुलसी के स्वप्न में झांकने वाले महिला समाज का चरित्र इस प्रकार है महिला अपने संपूर्ण व्यक्तित्व की स्वामिनी बने। महिला का चरित्र इतना साफ-सुथरा, उज्ज्वल और पारदर्शी हो कि उसमें उसके पूरे जीवन का प्रतिबिम्बन हो सके।

- महिला भारतीय संस्कृति और धार्मिक संस्कारों की जीवंत प्रतिमा बनकर जीये।
- कोई भी महिला अशिक्षित न रहे, निरक्षर न रहे।
- देहात, गांव और ढाणी में रहने वाली महिला भी पर्दे में न रहे।
- सामाजिक कुरूढ़ियों और परिवार की कृतार्थ परम्पराओं की भारवाहक बनने वाली कोई भी महिला न रहे।
- आभूषणों के व्यामोह और फैशन के नए नए तेवरों से महिला को मुक्ति मिले।
- विवाहित महिला अपने पति की दासी नहीं, सहचरी या साथ की पात्रता प्राप्त करे।
- कोई भी महिला हीनभावना से कुंठित न हो।
- पति के दिवंगत हो जाने पर वियोगिनी महिला की सामाजिक या पारिवारिक स्तर पर किसी प्रकार से दुर्गति न हो।
- प्रदर्शन और अन्धानुकरण की दौड़ से अलग हटकर महिला अपनी सृजन चेतना को जगाए।
- व्रत जीवन के लिए सुरक्षा कवच है, इस अवधारणा के साथ महिला अणुव्रत की आचार संहिता का पालन करे।
- सामाजिक वर्जनाओं और लक्ष्मण रेखाओं को एक सीमा तक अपनी सहमति देकर महिला अपने कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाए।
- एक महिला दूसरी महिला के प्रति उदार, सहिष्णु, संवेदनशील और सहयोगी बने। कम से कम वह उसके विकास में बाधा न पहुंचाए।
- महिला परिवार निर्माण योजना की संचालिका बने। इस योजना के अन्तर्गत संस्कार निर्माण, शान्त सहवास, सेवा, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि मूल्यों को जीवनगत बनाने के कार्यक्रम प्रस्तुत करे।
- दहेज की त्रासदी से मुक्त होने के लिए महिला कोई क्रान्तिकारी पग उठाए और समाज में दहेज की मूल्यहीनता को प्रस्थापित करे।
- महिला अपने आत्मविश्वास को जगाए और आत्मनिर्भर बनने की दिशा में विवेक के साथ गति करे।
- घर की दीवारों से बाहर पहचान बनाने की तड़प से पहले महिला अपने घर में अपनी अस्मिता स्थापित करे और कर्तृत्व को उजागर करे।
- महिला अपने मौलिक गुण-सहिष्णुता, विनम्रता और मृदुता को विकसित करती हुई अपने प्रति होने वाले अन्याय का प्रतीकार करे।
- महिला अपने चारित्रिक सौन्दर्य को सुरक्षित रखती हुई विकास के नए द्वार खोलने का प्रयत्न करे।
- समाज में गलत मूल्यों से संघर्ष का संकल्प लेकर चलने वाली महिला किसी भी कठिन परिस्थिति में अपने आपको दुर्बल होने से बचाए।

ये कुछ ऐसे सूत्र हैं जो भारतीय नारी की एक समग्र छवि अंकन कर सकते हैं और उसे गौरव की दीप्ति से चमका सकते हैं। आचार्य तुलसी के सपनों में उभरता हुआ यह महिला समाज जिस क्षण इस रूप में ढल जाएगा, वह क्षण महिला को महिला होने की सार्थकता का बोध दे सकेगा।

भ्रूण हत्या नहीं, भ्रूण संरक्षण हो

जाने कहां से उतरती आ रही आतंक की परछाइयां,
बचालो! बचालो! अपनी आयतें और चौपाइयां।
रोको, रोक दो इस बढ़ते भ्रूणहत्या कुकृत्य को,
कही ऐसा न हो चुप हो जाये शादी की शहनाइयां।।

शहनाई चुप तोरण द्वार सजे रह जायेंगे,
अजन्मी आँहे आंसू बाढ़ सुनामी लायेंगे।
न खिलती कलियां न फूल महकते देखोगे,
गर कन्या भ्रूण संरक्षण हम नहीं अपनायेंगे।।

मां मुझे बचाया तो मैं घर की लाज बचाउंगी,
चूमकर हथेली तेरी चाँद सूरज चमकाउंगी।
नेम धरम का पालूंगी घर का नाम करूंगी रोशन,
देखना। नाचूंगी गांउगी-रात से भोर नई लाउंगी।।

भ्रूण हत्या का महापाप जब अपने पैर पसारेगा,
पंचमकाल सघन होगा यहां देवता हारेगा,
आदर्श डूंबेंगे मंझधार-हाहाकार मचेगा देखना,
चंदन बाला का यश गीत गा कौन प्रभु को पुकारेगा।।

● **बंशीलाल 'पारस'**
ओशो कुंज ट-14 बापूनगर, भीलवाड़ा (राज.)

www.terapanthinfo.com

अहिंसक समाज-रचना के सूत्र

डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

जब तक मनुज-मनुज का यह
सुख-भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा।

रामधारी सिंह दिनकर

समाज-रचना की बात कोई नई बात नहीं है। मनुष्य ने अपनी वन्य अवस्था से लेकर अब तक सभ्यता की जो यात्रा तय की है वह प्रकारान्तर से समाज-रचना की ही खोज रही है। अनन्तकाल से विश्व के प्रायः सभी देशों में दार्शनिक, चिंतक, समाजशास्त्री आदर्श समाज के सूत्र तलाशने में लगे रहे हैं। यूनानी, रोमन, चीनी, भारत आदि देशों के अनेक दार्शनिकों ने अपने-अपने चिंतन के अनुसार समाज रचना के प्रारूप प्रस्तुत किये हैं। इन दार्शनिकों ने समाज-रचना के बारे में जो अपनी-अपनी दृष्टियां हमें दी, उनसे कालान्तर में प्रत्येक देश में अपने-अपने ढंग से समाज का स्वरूप निर्धारित होता रहा। पर, इतना तो मानना ही होगा कि कोई भी दृष्टि अंतिम दृष्टि नहीं कही जा सकती। दूर की बात न करके मार्क्स के चिंतन की बात करें। मार्क्स ने भौतिकवाद को केन्द्र में रखकर जो बात कही, वह भी अधूरी ही रही क्योंकि वह प्रयोग एक स्वस्थ समाज-रचना का आधार नहीं बन सका। तुलसी ने 'रामचरित मानस' में जिस समाज-रचना के संदर्भ में, रामराज्य की कल्पना की वह काफी हद तक आदर्श समाज की भित्ति बन सकती थी। उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी भी इसी 'रामराज्य की अवधारणा को अपने देश में रूपायित करना चाहते थे। पर ऐसा संभव न हो सका। यद्यपि कुछ लोग 'रामराज्य' की कल्पना को एक 'यूटोपिया' मानते हैं पर इतना अवश्य है कि इस चिंतन के पीछे एक स्वस्थ समाज-रचना के सूत्र छिपे हुए हैं। बहरहाल, यहां पर विचारणीय यह है कि आज की परिस्थितियों में जहां भौतिकता, उपभोक्तावाद, हिंसा प्रतिहिंसा जैसी आसुरी प्रवृत्तियां अपनी चरमसीमा पर हैं वहां एक अहिंसक समाज की रचना कैसे हो। स्थितियां अत्यन्त विकट हैं और लगता है कि हिंसा का यह ताण्डव उत्तरोत्तर तीव्र ही होता जा रहा है। भविष्य में मनुज हिंसा करते-करते कहां पहुंच जायेगा, यह कहना बहुत कठिन है। हां, यदि हमें मानव जाति को संहार से बचाना है तो अहिंसक-समाज का कोई विकल्प नहीं हो सकता। इस प्रकार के समाज की रचना के आधारभूत सूत्रों की तलाश आज के समय की बहुत बड़ी जरूरत है।

जब हम एक अहिंसक समाज-रचना की बात करते हैं तो हमें यह सोचना पड़ेगा कि हिंसा का उद्‌गम कैसे होता है। इस विषय में बहुत कुछ बोला, लिखा पढ़ा जाता रहा है, इसलिए 'हिंसा का मूल क्या है' इस पर विस्तार में न जाकर यह कहना संभवतः ठीक होगा कि मनुष्य को परिग्रह-प्रवृत्ति ही हिंसा की जननी है। परिग्रह प्रवृत्ति में भोगवाद, स्वार्थपरता, व्यष्टि का समष्टि पर हावी हो जाना सभी कुछ आ जाता है। यहां यह कहना उचित होगा कि कोई भी समाज सर्वथा हिंसा मुक्त नहीं हो सकता। अहिंसा के साथ हिंसा भी रहेगी। पर एक अहिंसक समाज में अहिंसक तत्वों की प्रधानता रहेगी जिसके कारण हिंसा निस्तेज होकर अपने आप न्यूनतम होती जायेगी। जब अहिंसक समाज में रहने वाले अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जायेंगे तो वैर कहां होगा, जब वैर ही न होगा तो हिंसा क्यों होगी। महर्षि पतंजलि की बात इस बात को पुष्ट करती है ''अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैर त्यागः।'' विचार यह करें कि आजकल हिंसा क्यों बढ़ रही है और इसके रहते-रहते एक अहिंसक समाज की स्थापना कैसे की जा सकती है?

मेरे विचार से हिंसा के निम्नांकित कारण हैं

- भोगवादी प्रवृत्ति,
- स्वार्थपरता,
- असमानता,
- बेरोज़गारी,
- शक्ति-संचय की लालसा,
- प्रभुत्व की कामना,
- नैतिकता के मूल्यों का ह्रास,
- सच्ची आध्यात्मिकता का अभाव,
- छद्‌म धार्मिकता और नकली आध्यात्मिकता।

इन कारणों के साथ अन्य कारण भी हो सकते हैं, पर वे सभी इन्हीं के अंतर्गत आ जाते हैं। एक अहिंसक समाज-रचना के सूत्र खोजते समय हिंसा के इन कारणों का निवारण परमावश्यक है।

उक्त कारणों का निवारण आसान नहीं है क्योंकि मनुष्य की चेतना में ये कारण एक प्रकार से बद्धरूढ़ हो चुके हैं। उसे इनसे कैसे मुक्त किया जाये यह बहुत बड़ा सवाल है। आज की हिंसा का कुनबा इन्हीं कारणों से दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है क्योंकि मनुष्य की चेतना का परिष्कार नहीं हो पा रहा है। जब तक मनुष्य का चित्त इनसे मुक्त नहीं होगा तब तक अहिंसक समाज की बात पूरी नहीं हो सकती। बात सुनने में कुछ अतिदार्शनिक सी अवश्य लग सकती है पर समस्या का समाधान इसी में छिपा हुआ है। हां, यह रचना रातोंरात संभव नहीं। सदियां भी लग सकती हैं। एक-एक बार ठीक तरह से शुरुआत हो जाये तो कम से कम ऐसे स्वस्थ समाज की नींव तो पड़ ही सकती है। बहरहाल।

आज के भौतिकवादी समाज में भोगवादी प्रवृत्ति एक दम समाप्त हो जाये, फिलहाल तो ऐसा नहीं लगता। कौन सुनता है 'भोगाः न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः'। किसे फुर्सत है यह सोचने की कि 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'। ''मैन डज नॉट लिव बाई ब्रैड अलोन'' मात्र कहने की बात रह गयी है। ऐसी स्थिति में मनुष्य का चित्त, ज्ञान-तपस्या-साधना के तप्तस्वर्ण व्यक्तित्व वाले साधु और संत ही बदल

www.terapanthinfo.com

सकते हैं अपनी स्वयं की मनसा वाचा कर्मणा जीवन-शैली से। बशर्ते कि मनुष्य उन तक पहुंचे। यह बात इसलिए संभव है क्योंकि लोगों के चित्त बदले हैं। प्रारंभ में तो यह काम एक व्यक्ति से ही शुरू होगा। बाद में जब ऐसे परिष्कृत चित्त वाले लोग शनैः-शनैः जुड़ते जायेंगे तब एक अहिंसक समाज की रचना का कुछ न कुछ खाका बनने लगेगा। जब भोगवादी प्रवृत्ति के प्रति आकर्षण कम होगा तो स्वार्थपरता अपने आप समाप्त होती जायेगी। जब स्वार्थपरता नहीं रहेगी तो हिंसा की क्या जरूरत रहेगी। जब व्यक्ति व्यष्टि की सकारात्मक भूमिका को समझकर समष्टि के हित में अपने स्वार्थ का विसर्जन कर देगा तो वह हिंसा पर उतारू क्यों होगा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा भी है

''निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।''

(साकेत)

यह बदलाव धीरे-धीरे ही आयेगा। इसलिए एक अहिंसक समाज की रचना का एक महत्वपूर्ण सूत्र समष्टि के लिए व्यष्टि के विसर्जन की स्वारोपित मानसिकता का विकास समझना चाहिए। यह सही है कि आसुरी प्रवृत्तियां विस्तारवादी होती हैं और मनुष्य इनकी गिरफ्त में जल्दी आता है पर सही यह भी है कि विजय अन्ततः अहिंसा जैसे तत्वों की ही होती है। 'सत्यमेव जयते' और अहिंसा सत्य का ही स्वरूप है। मनुष्य के चित्त के परिष्कार की दिशा में अनेक साधु-संत, योगी, ऋषि, मुनि, धर्माचार्य आदि अथक प्रयत्न कर रहे हैं। अनैतिकता के साथ अनुबध करने वाली राजनीति हिंसा को बढ़ाने में मदद कर रही है। इसलिए अहिंसक समाज रचना के लिए दूसरा सूत्र यह है कि देश के लोग राजनीति को समस्त विकृतियों से मुक्त करने की दिशा में एकजुट होकर कार्य करें।

यह काम वही लोग कर पायेंगे जो स्वयं इन विकृतियों से मुक्त हों। एक ऐसा माहौल बनाने की मुहिम छिड़नी चाहिए कि राजनीति में स्वच्छ छवि वाले, शुद्ध चरित्र वाले तथा त्यागमय जीवन शैली वाले लोग ही राजनीति में आयें। ऐसे लोग ही 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' कार्य कर सकेंगे। यदि यह प्रक्रिया प्रारंभ हो सकी तो एक अहिंसक समाज का प्रारूप सामने आने लगेगा। याद रहना चाहिए कि राजनीति में आने वाले लोग सही अर्थ में 'धार्मिक' हों यानी नैतिक भी हों। यह बात आज के संदर्भ में अवश्य ही असंभव सी लग सकती है पर यही प्रयोग अन्य समाज रचना के प्रयोगों की तुलना में अधिक कारगर सिद्ध होगा। बस, बात मनुष्य के सकारात्मक बदलाव पर ही जाकर टिक जाती है। तथापि, यह संभव है क्योंकि मनुष्य का सकारात्मक बदलाव होता है बशर्ते कि वह स्वयं अपने को बदलना चाहे और वह उसे बदलने वाले शुद्ध चरित्रात्माओं के प्रति बिना लाग-लपेट के अपने को सौंप दे। रही बात शक्ति संचय और प्रभुत्व की कामना की तो यह प्रवृत्ति तो मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है खास तौर से बड़े लोगों की। अंग्रेजी कवि मिल्टन ने तो ऐसी महत्वाकांक्षा को बड़े लोगों की एक कमजोरी माना है। (लास्ट इन्फरमिटी ऑव ए नोविल माइन्ड)। इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए जरूरी है कि **मनुष्य, मनुष्य की समानता का दर्शन समझें। मनुष्य के आभ्यंतर बदलाव की प्रक्रिया में समानता का भाव एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। यहां पहुंच कर मनुष्य समानता के जिस प्रांतर में प्रवेश करता है वहां न तो द्वेष है, न वैर है और न हिंसा ही। समाज में द्वन्द्व तो इसीलिए है क्योंकि असमानता अपने कई विकृत रूपों में सामने है। असमानता का यही रोड़ा अहिंसात्मक समाज के रथ को आगे बढ़ने से रोकता है। मसलन, संपत्ति के वितरण में असमानता, धार्मिक सोच में विकृत असमानता, जातियों के आधार पर आदमी-आदमी के बीच असमानता और न जाने कितनी असमानताएं। इसलिए जरूरी है कि एक अहिंसक समाज के रचना की बुनावट में असमानता का विघटक धागा नहीं आना चाहिए।** जब तक समाज के किसी भी क्षेत्र में असमानता होगी, हम द्वन्द, संघर्ष और हिंसा से बच नहीं सकते। अतएव, समानता की स्थापना और हर प्रकार की असमानता की समाप्ति को एक अहिंसक समाज-रचना का तीसरा सूत्र मानना चाहिए।

हिंसा का एक महत्वपूर्ण कारण नैतिकता के मूल्यों का ह्रास है। यह ह्रास हमारी सच्ची आध्यात्मिकता के अभाव से जुड़ा हुआ है। इसमें छद्म धार्मिकता और नकली आध्यात्मिकता कोढ में खाज का काम कर रही है। हम बात-बात में धर्म और पंथ के नाम पर हिंसा कर बैठते हैं। कभी राजनीतिक हिंसा, कभी भाषा के नाम पर हिंसा, कभी भू-भाग के बंटवारे पर हिंसा, कभी पानी के बटवारे पर हिंसा आदि, इसी प्रकार की हिंसाएं हमारे समाज को जीर्णक्षीर्ण कर रही हैं। यह इसलिए हो रहा है कि हम आध्यात्मिकता की आत्मजा नैतिकता के मर्म को नहीं समझना चाहते। हमें अनैतिकता ज्यादा आसान लगती है इसलिए हमारे मन-प्राण उसी में रच-बस जाना चाहते हैं। स्मरण रहे कि अनैतिकता के रहते और सच्ची आध्यात्मिकता के अभाव में एक अहिंसक समाज की कल्पना मात्र कल्पना ही रहेगी। इसलिए एक अहिंसक समाज रचना का चौथा सूत्र है नैतिकता का पोषण और सच्ची आध्यात्मिकता का सतत संवर्द्धन। यह काम्य स्थिति भी मनुष्य के क्रमिक आभ्यन्तर परिवर्तन से जुड़ी हुई है। बहरहाल।

अब बात करें कुछ जमीनी हकीकतों की। मसलन आतंकवाद, फिरकापरस्ती, भुखमरी, बेरोज़गारी एवं बाजारवाद की। आज के संदर्भ में जबकि सारी दुनिया एक 'विश्वग्राम' बन चुकी है हम अलग-अलग रहकर हिंसा के निवारण की बात नहीं कर सकते। प्रायः यह देखा जा रहा है कि भुखमरी और बेकारी की समस्याएं संसार के सभी अविकसित या विकासोन्मुख देशों में विद्यमान हैं। बेरोजगारी एवं भुखमरी की एक भगिनी हिंसा है। कहा भी है कि भूखा व्यक्ति उदात्त आदर्शों एवं देशभक्ति या मानव-प्रेम जैसी बातों को

www.terapanthinfo.com

ज्यादा तरजीह न देकर पेट भरने की कोशिश करता है

''लोग जिस रोटी के टुकड़े के लिए बेचैन है,
कुछ भी कर डालेगा वह रोटी का टुकड़ा एक दिन।''

और कविवर 'नीरज' के ये शब्द बहुउद्धृत हैं ही

'भूखे पेट को देशभक्ति सिखाने वालो।
भूख इंसान को गद्दार बना देती है।'

इसलिए एक अहिंसक समाज रचना का पांचवा सूत्र यह है कि हम बेरोजगारी, भुखमरी जैसी हिंसा उत्प्रेरक स्थितियों पर काबू पाने के लिए परिणामोन्मुख एकल एवं सामूहिक प्रयत्न करें। लोककल्याणकारी राज्य-व्यवस्थाओं की यह खास जिम्मेदारी है।

हिंसा का पौधा फिरकापरस्ती की जरखेज़ जमीन में जल्दी पनपता है। और यही जहरीला पौधा आतंकवाद का जहर उगलता है। आज आतंकवाद कहां नहीं है? फिरकारस्ती तंगदिली, हैवानियत आतंकवाद की तिपाई है जिस पर बैठकर आतंकवाद लोगों में दहशतगर्दी फैलाता है, उन्हें मौत के घाट उतारता है। देश की राजनीति हो या वैश्विक स्तर की राजनीति हो वह आतंकवाद को अपने-अपने स्वार्थ के लिए सींचती है। फलस्वरूप, इन्सानियत का रोजमर्रा कत्ल होता रहता है। और फिर जब से बाजारवाद ने अपने पैर पसारे हैं एक अजीब-सी हालत हो गयी है सारी दुनिया की। बाजारवाद की इस दुनिया में आदमी कहां खो गया है, यह हमें पता नहीं। इसलिए एक अहिंसात्मक समाज रचना के संदर्भ में छठा सूत्र है 'फिरकापरस्ती, खुदगर्जी, तंगदिली और आतंकवाद के खिलाफ न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपितु वैश्विक स्तर पर एक प्रभावी अभियान छेड़ा जाये। यह काम मिलकर ही हो सकेगा। उक्त सामाजिक विसंगतियों पर भारत ने अतीत में सदैव विजय पाई है पर आज वह 'विश्वगुरू' भी इन विसंगतियों से शिकस्त खा रहा है। इसलिए जरूरी है कि वह सारी दुनिया को सबक देने से पहले अपने घर को दुरुस्त करे। तथापि इस कार्य में हमारे तत्पस्वर्ण जीवन वाले संत महात्मा ही अधिक सहायक हो सकते हैं। मैंने एक स्थान पर लिखा है

'यह मही टिकी है नहीं शेष के फन पर
यह टिकी हुई है तत्पस्वर्ण जीवन पर।'

ऐसे महात्मा व्यक्ति ही एक आदर्श अहिंसात्मक समाज के निर्माण में एक उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकते हैं।

अंत में, एक अहिंसक समाज की रचना युग की अपरिहार्य आवश्यकता है। इस रचना के संदर्भ में मैंने जो सूत्र सुझाये हैं उनकी प्रभावी क्रियान्विति ही इस प्रकार के समाज के निर्माण में एक महत्वपूर्ण घटक होगी। यह हम जानते हैं कि हमारी भौतिक उपलब्धियां अपरिमेय हैं, हमें इन पर गर्व भी है, हमें अपनी इन सफलताओं के नज़ारे भलीभांति दिखते हैं पर हमारी दृष्टि हिंसा की शिकार होती हुई इन्सानियत की मौत को नहीं देख पाती। यह एक विडम्बना ही है। अपनी कुछ पंक्तियों को उद्धृत करता हुआ मैं इस सदी पर एक सवालिया निशान लगाता हूं। शायद आप भी ऐसा ही सोचते हो

यह सदी कैसी सदी है?
कह रहे हैं लोग हम आगे बढ़े हैं
ज्ञान औ' विज्ञान के ऊंचे शिखर हमने चढ़े हैं
अग्नि, जल, वायु, धरित्री और यह नीला गगन-
हाथ जोड़े ये आज हमारी सेवा में खड़े हैं,
हैं हमारी मुट्ठियों में काल के बढ़ते कदम
जन्म की संभावनाएं और जीवन का क्षरण,
दीखते हमको गगनचुम्बी सफलता के नज़ारे
ज़िन्दगी के स्वप्न करते हैं हमारा ही वरण,
पर हमें दिखते नहीं इन्सानियत के तैरते शव,
जो बहा ले जा रही यह वक्त की मैली नदी है।
यह सदी कैसी सदी है?

केवल एक अहिंसक समाज ही इस सदी के हिंसक मंज़र को बदलकर इंसानियत को जिन्दा रख सकता है। आइए, हम सब मिलकर ऐसे समाज की संरचना में यथासंभव सहयोग प्रदान करें।

संयोजक : अणुव्रत लेखक मंच
7-च-2, जवाहरनगर,
जयपुर-302004 (राजस्थान)

अहिंसा और धर्म की शक्ति

धर्म और अहिंसा का बल सर्वोच्च होता है। धर्म पर टिके रहने से मिलने वाली विजय दमनकारी ना होकर आंतरिक परिवर्तन लाने वाली होती है। धर्म पर डटा रहनेवाला व्यक्ति अशांत और तनावग्रस्त नहीं होता और उसके निर्णय भावनाओं के स्थान पर विवेक पर आधरित होते हैं। इस कारण किसी विरोधी पर उसकी विजय भी भौतिक ना होकर हृदय की दुर्भावनाओं पर होती है।

इस संदर्भ में प्रस्तुत है एक प्रसंग–एक बार महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में नंदिनी नाम की एक गाय थी। नंदिनी कामधेनु थी जो सभी कामनाएं पूर्ण करती थी। उसने क्षणभर में ही राजा सहित सारी सेना की हर इच्छित वस्तु प्रदान कर दी। उस गाय की शक्ति देखकर विश्वामित्र के मन में लोभ आ गया, और सोचने लगे कि ऐसी नंदिनी कामधेनु तो किसी सम्राट के पास ही शोभा दे सकती है। इसका आश्रम में क्या काम? राजा विश्वामित्र ने वशिष्ठ से गाय मांगी। वशिष्ठ ने मना कर दिया। विश्वामित्र ने उनसे जबर्दस्ती ले जाना चाहा। लेकिन नंदिनी ही आगे नहीं बढ़ी, तब राजा के सैनिकों ने आश्रम को तहस-नहस कर दिया।

वशिष्ठ यह सब देखते हुए भी शांत रहे। उन्होंने कहा-हिंसा मेरा धर्म नहीं है। इसलिए मैं प्रतिकार नहीं कर सकता। तब नंदिनी ने संकल्प शक्ति से अनेक सैनिक उत्पन्न किए जो विश्वामित्र के सैनिको को परास्त करने लगे। क्रोधित विश्वामित्र ने महर्षि वशिष्ठ पर भी अस्त्र छोड़े। फिर भी उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया। सिर्फ बचाव में वे अपना ब्रह्म दंड घुमाते रहे जिससे विश्वामित्र के अस्त्र नाकाम हो जाते। वशिष्ठ की अहिंसा और धर्म की शक्ति से विश्वामित्र इस तरह प्रभावित हुए कि वे राजपाट त्यागकर उस ब्रह्म बल को पाने के लिए वन में चले गए।

प्रस्तुतिः पूनम कुमारी

www.terapanthinfo.com

बापू के काम की चीज़

डॉ. शुभंकर बनर्जी

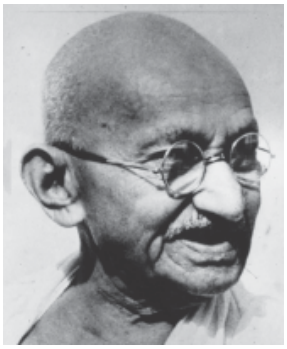

महात्मा गांधी केवल राजनैतिक व्यक्ति ही नहीं थे, बल्कि बहुमुखी व्यक्तित्व के भी धनी थे। वे संत होने के आधार पर आध्यात्मिक गुण-संपन्न महात्मा तो थे ही साथ ही सर्वधर्म समभाव हेतु निरंतर प्रयासरत रहते थे। उन्हें लगभग सभी धर्म शास्त्रों तथा पंथों के मूलभूत सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त था। परन्तु इन सभी तथ्यों से सर्वोपरि तत्व यह था कि वे लेखक तथा संपादक भी थे। कानून की उपाधि प्राप्त करके, अधिकृत रूप से उन्होंने तर्कशास्त्र का भी मानो लाइसेंस प्राप्त कर लिया था। इस तरह बगैर किसी के दिल को ठेस पहुंचाए बिल्कुल सामान्य ढंग से अपनी बात स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने की अनोखी कला उनके पास थी। इस कला के बल पर उन्होंने अपने सभी आलोचकों तथा विरोधियों के न केवल दिल ही जीते बल्कि स्थायी रूप से उन के हृदय में अपना आदरपूर्ण स्थान भी बनाया।

इसी तरह उनके लिए काम की वस्तुओं के मायने अलग थे। कोई धन-सम्पत्ति आदि कमाने में लगा रहता हो तो लगा रहे, परंतु बापू की चाहत तो अनोखी थी। छोटी-छोटी बातों पर उन्होंने जोर दिया, जिसके आधार पर उनकी पहुंच आम जनता तक मजबूत होती गयी। किसी भी व्यक्ति या वस्तु की उन्होंने कभी अवहेलना नहीं की। बस यहीं से उनके काम की वस्तुओं की कसौटी बिल्कुल अलग होती थी। उदाहरण के तौर पर, उन्होंने सभी पत्रों का उत्तर निश्चित तौर पर दिया, चाहे पत्र लिखने वाला कोई भी हो। हो सकता है कि पूरा उत्तर देना समयाभाव के कारण संभव नहीं था परन्तु फिर भी उन्होंने यथासंभव कम से कम शब्दों में उत्तर देने की स्वस्थ परम्परा कायम रखी।

बापू किसी के भी पत्र के उत्तर देने में देरी नहीं करते थे। उनके पास असंख्य पत्र आते थे, जिनका वे ज्यादा नहीं तो छोटी-छोटी टिप्पणी लिखकर उत्तर देते थे। जैसे बहुत खूब, शाबाश, प्रिय, आपका पत्र मिला, धन्यवाद, आशीर्वाद, अभिवादन, अभिनंदन, सादर आमंत्रण, स्वागत है इत्यादि। आखिरकार उनका यह नियम टूट ही गया। इस पर उन्होंने अफसोस भी व्यक्त नहीं किया, और एक पत्र का उत्तर नहीं दिया। साधारणतः गांधीजी पश्चाताप के तौर पर व्रत या उपवास रखते थे। परंतु इस बार उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। पत्र डालने वाले की जिज्ञासा बढ़ती गयी कि आखिरकार बापू ने पत्र का उत्तर क्यों नहीं दिया।

दरअसल पूरी घटना के पीछे एक मजेदार रहस्य यह था कि पत्र लिखने वाला व्यक्ति न केवल उनका कठोर आलोचक था बल्कि कटु निंदक और तीव्र विरोधी भी था। बापू इस सिद्धांत का समर्थन भी करते थे कि निंदकों और आलोचकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि इससे व्यक्तित्व का विकास होता है और अपनी गलतियों को सुधारने का सुअवसर प्राप्त होता है।

उक्त पत्र में महज अनाप-शनाप बातें, अनर्गल अलापयुक्त टिप्पणियां बापू के विरुद्ध की गयी थी। बापू ने मन ही मन कुछ सोचा और निर्णय कर लिया कि इस पत्र का उत्तर देना आवश्यक नहीं है। और न ही पत्र में उत्तर देने योग्य कोई विषयवस्तु उनके दिमाग में थी। अहिंसा की पूजा करने वाले बापू ने सोचा, ''उस व्यक्ति ने अकारण ही यह पत्र लिखा और जिस तरह से हिंसा का जवाब हिंसा नहीं हो सकता उसी तरह यहां अकारण निंदा का जवाब भी निंदा नहीं हो सकती।''

समय बीतता गया उस व्यक्ति को अपने पत्र का जब उत्तर नहीं मिला तो उसने सोचा, ''या तो पत्र डाक में कहीं खो गया है या बापू ने व्यस्तावश देर से जवाब दिया हो जिसकी वजह से मुझे अभी तक उनका पत्र नहीं मिला। काफी इंतजार कर उस व्यक्ति ने सोचा कि उत्तर नहीं मिला तो कोई बात नहीं, ''चलो जब बापू से मुलाकात होगी तब उनसे पूछ लूंगा।''

आखिरकार एक स्थान पर उसकी मुलाकात बापू से हो गयी। उसने मौका ढूंढकर बापू से पूछ ही लिया कि मैंने आपको बहुत दिन पहले एक पत्र लिखा था। आपने जवाब नहीं दिया। आप तो सभी को जवाब भेजते हैं, पर मुझे क्यों नहीं भेजा। ऐसा तो नहीं कि आप ने उत्तर दिया हो और पत्र डाक में खो गया हो।

बापू ने तपाक से जवाब दिया कि निरर्थक शब्दों का कोई उत्तर नहीं हो सकता। इसलिए उत्तर देना मैंने उचित नहीं समझा, क्योंकि आपने पत्र में कोई काम की बात नहीं लिखी।

बापू की बात सुनकर उस व्यक्ति को बापू की आलोचना करने का एक और अवसर मिल गया। उसने बापू पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की, ''आखिरकार मैंने आपका पुराना रिकॉर्ड (सभी पत्रों के उत्तर देने का) तोड़ ही दिया। मेरे पत्र का आपके पास कोई जवाब नहीं था।''

बापू ने मुस्कराकर कहा, ''मैं केवल काम की चीजें ही अपने पास रख लेता हूं। पत्र में काम की बात कुछ भी नहीं थी। अतः उत्तर भी नहीं दिया। रिकॉर्ड टूटने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि तुमने पत्र तो लिखा ही नहीं था। बस कूड़ा था। मैंने उन कागजों को कूड़ेदान में डाल दिया।''

उसमें मेरे काम की एक चीज अवश्य थी। कागजों के साथ एक आलपिन मेरे काम की थी, जिसे मैंने संभाल कर रख लिया, जो कभी न कभी जरूर काम आयेगी। बापू ने राष्ट्र सेवा में एक मामूली आलपिन की भूमिका की भी पहचान की और यही उन्हें महात्मा की उपाधि देने के औचित्य के लिए पर्याप्त है।

श्री राधाकृष्ण निवास, 5, स्वर्गाश्रम,
वेस्ट मुखर्जी नगर, दिल्ली-9

www.terapanthinfo.com

सत्य एवं अहिंसा का मार्ग

डॉ. बी.एन. पांडेय

प्रथम संस्मरण : सन् 1934 में गांधीजी का प्रथम दर्शन मुझे अपने गांव में हुआ। 14 जनवरी 1934 में बिहार में आई भूकम्प त्रासदी में लाखों लोग तबाह हुए एवं जान-माल की भी भारी क्षति हुई। भूकम्प का सिलसिला थोड़ा-बहुत 20-25 दिनों तक लगातार चलता रहा। मेरा घर पूर्व से ही कांग्रेसियों का अड्डा था। राष्ट्रीय हो या प्रांतीय गरम-दल या नरम-दल लगभग सभी विचारधाराओं के लोगों का आरामगाह मेरा ही घर था। मेरे पिता स्व. रामलक्ष्मण पांडेय गरम-दल के लोगों से अत्यधिक प्रभावित थे, परन्तु गांधीजी की कही बातों पर भी उनका चिंतन रहता था। वे अक्सर ये पंक्तियां बोला करते थे

लीडरों की धूम है, फौलबर कोई नहीं,
सबके सब लीडर बने, आखिर सिपाही कौन है?

जिन दिनों गांधीजी मेरे गांव में आये पिताजी ने बढ़-चढ़कर उनका स्वागत किया, (स्व. महामाया प्रसाद सिन्हा) जो अ.भा. कांग्रेस कमेटी (युवा कांग्रेस) के अध्यक्ष थे उन्होंने मेरे पिताजी को प्रांतीय एवं जिला-स्तरीय कई जिम्मेवारी सौंप रखी थी। अ.भा कांग्रेस कमेटी की कार्यसमिति की बैठक भी मेरे यहां हुई जिसमें राष्ट्रीय स्तर के लोगों ने भाग लिया। उस बैठक के कांग्रेस कार्यकारिणी सदस्य आचार्य राममूर्ति जी आज भी जिन्दा हैं। कमतौल से गांधीजी ने चम्पारण, मुंगेर आदि स्थानों के लिए प्रस्थान किया। पिताजी ने मुझे भी अपने साथ सुगौली (चम्पारण) तक चलने को कहा। मैं सहर्ष तैयार हो गया। गांधीजी को हाई स्कूल में ठहरने की व्यवस्था थी। हम लोग भी वहीं रुके। महीना वो 28-29 जनवरी रहा होगा। सायं 5 बजे गांधीजी ने एक पत्र दिया वासुदेव मिश्रजी को दे आने और उनसे उत्तर लाने के लिए। मैंने पत्र लेकर जाने से इन्कार कर दिया और कहा कि रास्ते में भूत रहता है। मैं पत्र लेकर नहीं जाऊंगा, क्योंकि मुझे भूत से डर लगता है और रास्ते में नदी और श्मशान भी है।

फिर गांधीजी ने कहा "देश-दुनियां का काम करने वाला स्वयं भूत होता है।" ऊपरी भूत उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। खैर मैं पत्र का उत्तर ले आया।

दूसरा संस्मरण : मैं, मेरे पिताजी और माँ के साथ सेवाग्राम आश्रम गया। उन दिनों उच्च वर्ग के घरानों में पर्दाप्रथा का चलन था। पर्दा के खिलाफ अर्थात् पर्दा-प्रथा समाप्त करने का प्रशिक्षण आश्रम में प्रारंभ हुआ। इसमें मेरी माँ भी शामिल थी। समाज में कुछ लोगों ने मेरे परिवार का बहिष्कार करने का निर्णय लिया, जो बाद में सामान्य हो गया। इसी प्रकार छुआ-छूत मिटाने, सह-भोज में भाग लेने पर संघर्ष करना पड़ा।

गांधीजी के आश्रम में नियम था कि प्रत्येक आश्रमवासी को आश्रम के कार्यों में समयबद्ध होकर काम करना पड़ता था। मेरी भी एक दिन बर्तन साफ करने की बारी आई। मैं लग्न के साथ बर्तन साफ करने लगा और सभी बर्तन चमका दिये। फिर गांधीजी को कहने गया बापू आज के बर्तन सफाई का काम देखें और मुझे दो चम्मच घी भोजन में देने का आदेश दें। गांधीजी पहले तो हंसे फिर भोजनालय में जाकर मुझे दो चम्मच घी देने का आदेश दिया।

भारत की आजादी के लिए भले ही गांधीजी के विचारों को अपनाता रहा लेकिन गांधीजी के रास्ते से देश को आजादी मिलेगी, ऐसा विश्वास न मेरे पिताजी को था और न मेरी मां को, वही हुआ पिताजी अंग्रेजों के साथ जूझते हुए शहीद हो गये। मेरी मां चूंकि क्रांतिकारी गतिविधियां देखती रहती थीं, पति का सदमा बर्दाश्त किया और पूरे घर की बागडोर मेरे मामा के सहयोग से संभाल ली। सन् 1943 में मैं आई.एन.ए. में दाखिला लेकर देश के लिए युद्ध में शरीक हुआ। युद्ध समाप्ति पर जेल गया, 1947 में पुनः आजादी पश्चात् शिक्षा, रचनात्मक कार्य, खादी, सर्वोदय लोकतंत्र आदि चिंतन, अणुव्रत में 'पूर्ण समर्पित' सक्रियता से लग गया।

सत्य का, अहिंसा का मार्ग जितना सीधा है उतना ही तंग भी, खांडे की धार पर चलने के समान है। नट जिस डोर पर सावधानी नजर रखकर चल सकता है। सत्य और अहिंसा की डोर उससे भी पतली है। जरा चूके कि नीचे गिरे। पल-पल की साधना से ही उसके दर्शन होते हैं।

लेकिन सत्य के सम्पूर्ण दर्शन तो इस देह से असंभव हैं। उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। क्षणिक देह द्वारा शाश्वत धर्म का साक्षात्कार संभव नहीं होता। अतः अंत में श्रद्धा के उपयोग की आवश्यकता तो रह ही जाती है।

इसी से अहिंसा जिज्ञासा के पल्ले पड़ी। जिज्ञासा के सामने यह सवाल पैदा हुआ कि अपने मार्ग में आने वाले संकटों को सहे या उनके निमित्त जो नाश करना पड़े वह करता जाय और आगे बढ़े? उसने देखा कि नाश करते चलने पर वह आगे नहीं बढ़ता, दर-का-दर पर ही रह जाता है। संकट सहकर तो आगे बढ़ता है। पहले ही नाश में उसने देखा कि जिस सत्य की उसे तलाश है वह बाहर नहीं है, बल्कि भीतर है। इसलिए जैसे-जैसे नाश करता जाता है वैसे-वैसे वह पीछे रहता जाता है, सत्य दूर हटता जाता है।

चोर हमें सताता है, उससे बचने को हमने उसे दंड दिया। उस वक्त तो वह भाग गया लेकिन उसने दूसरी जगह जाकर सेंध लगाई पर वह दूसरी जगह भी हमारी ही है। अतः हमने अंधेरी गली में ठोकर खाई। चोर का उपद्रव बढ़ता गया, क्योंकि उसने तो चोरी को ही अपना कर्त्तव्य मान रखा है। इससे अच्छा तो हम यही पाते हैं कि चोर का उपद्रव सह लें, इससे चोर को समझ आएगी। इस सहन से हम देखते हैं कि चोर हमसे भिन्न नहीं है। हमारे लिए तो सब सगे हैं, मित्र हैं। उन्हें सजा देने की जरूरत नहीं;

www.terapanthinfo.com

लेकिन उपद्रव सहते जाना ही बस नहीं हैं। इससे तो कायरता पैदा होती है। अतः हमारा दूसरा विशेष धर्म सामने आया। यदि चोर अपना भाई है तो उसमें यह भावना पैदा करनी चाहिए। हमें उसे अपनाने का उपाय खोजने तक का कष्ट सहने को तैयार रहना चाहिए। यह अहिंसा का मार्ग है। इसमें उत्तरोत्तर दुःख उठाने की ही बात आती है, अटूट धैर्य-शिक्षा की बात आती है। यदि वह हो जाय तो चोर साहूकार बन जाता है और हमें सत्य के अधिक स्पष्ट दर्शन होते हैं। ऐसा करते हुए हम जगत को मित्र बनाना सिखाते हैं, ईश्वर की, सत्य की महिमा अधिक समझते हैं; संकट सहते हुए भी शांति-सुख बढ़ता है; हममें साहस, हिम्मत बढ़ती है; हम शाश्वत-अशाश्वत का भेद अधिक समझने लगते हैं, हमें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक हो जाता है, गर्व गल जाता है, नम्रता बढ़ती है परिग्रह अपने आप घट जाता है और देह के अंदर भरा हुआ मैल रोज-रोज कम होता जाता है।

यह अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है जो आज हमारी दृष्टि के सामने है। किसी को न मारना इतना तो है ही। कुविचार मात्र हिंसा है। उतावली हिंसा है। मिथ्या भाषण हिंसा है। द्वेष हिंसा है। किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है। पर हम जो कुछ खाते हैं वह जगत के लिए आवश्यक है। जहां खड़े हैं वहां सैकड़ों सूक्ष्म जीव पड़े हैं पैरों तले कुचले जाते हैं, यह जगह उनकी है। फिर क्या आत्माहत्या कर लें? तो भी निस्तार नहीं है। विचार में देह के साथ संसर्ग छोड़ दें तो अंत में देह हमें छोड़ देगी। यह मोहरहित स्वरूप सत्यनारायण है। ये दर्शन अधिरता से नहीं होते। यह समझकर कि देह हमारी नहीं है, यह हमें मिली हुई धरोहर है, इसका उपयोग करते हुए हमें आगे बढ़ना चाहिए।

मैं सरल चीज लिखना चाहता था; पर हो गई कठिन। फिर भी जिसने अहिंसा का थोड़ा भी विचार किया होगा उसे समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

इतना तो सबको समझ लेना चाहिए कि अहिंसा बिना सत्य की खोज असंभव है। अहिंसा और सत्य ऐसे ओत-प्रोत सिक्के के दोनों रूख या चिकनी चकती के दो पहलू। उसमें किसे उलटा कहें, किसे सीधा? फिर भी अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य मानना चाहिए। साधना अपने हाथ की बात है। इसमें अहिंसा परम-धर्म मानी गई। सत्य परमेश्वर हुआ। साधना की चिंता करते रहने पर साध्य का दर्शन किसी दिन कर ही लेंगे। इतना निश्चय करना, जग जीत लेना है। हमारे मार्ग में चाहे जो संकट आयें, बाह्य दृष्टि से देखने पर हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई दे तो भी हमें विश्वास न छोड़कर एक ही मंत्र जपना चाहिए सत्य है, वहीं है, वही एक परमेश्वर है। उसके साक्षात्कार को एक ही मार्ग है, एक ही साधन अहिंसा है, उसे कभी नहीं छोड़ेंगे। जिस सत्य रूप परमेश्वर के नाम पर यह प्रतिज्ञा की है, वह हमें इसके पालन का बल दे! गीता का श्लोक है

समं पश्लन् हि सर्वत्र समवास्यम् ईश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानम् ततो भाति परागतिम्।।

आजादी की लड़ाई के जब्त शुदा तराने

कमख्वाब बे-फरोग है....

खद्दर में सादगी की अजब आनबान है,
कायम इसी से 'अहदे-गुलिश्ता' की शान है,
पोशिश अमीर की है, गरीबों की जान है,
कैसी अजीब चीज यह गाढ़े का थान है।

पोशाक अहले-हिन्द को जेबातरीं है यह,
कम खर्च और साथ में बालानशीं है यह।

खद्दर का तार-तार सफाई में फर्द है,
इसकी सफा से मखमले-रूमी भी गर्द है,
बाजार इसके दम से विदेशी का सर्द है,
पहनो इसे, वतन का अगर दिल में दर्द है।

अतलस खाजिल है गाढ़े की चद्दर के सामने,
कम ख्वाब बे फरोग है खद्दर के सामने।

तनजेब में कहां है जो खद्दर में है सिफात,
इसमें वो सादगी है सौ बांकपन है मात,
अरजानो-पायदार, बरी अज तकल्लुफात,
है अहले-हिंद के लिए यह बाइसे-निजात!

पहने जो हम इसे, तो रहें तंगदस्त क्यों,
मजदूरों-दस्तकार फिरें फाकामस्त क्यों!

खद्दर का जेबे-तन हो हमारे अगर लिबास,
बाहर न जाने पाएं कभी हिंद का कपास,
भारत-निवासियों को मिले नफा बे-कयास,
दौलत रहे वतन की फिर अहले-वतन के पास।

फाकों से खस्तादिल न कोई भी गरीब हो,
कपड़ा बदन को पेट को रोटी नसीब हो।

या रब दुआ है, हिंद में इसका चलन रहे,
कायम जहां में शौकतो-शाने-कुहन रहे,
जब तक जिएं, बदन पे लिबासे-वतन रहे,
मरने पे पर्दा पोश स्वदेशी स्वदेशी कफन रहे।

चमके नशीबेवर्क जो इसका रिवाज हो,
योरोप के माल की नहीं फिर एहतियाज हो।

◆ **डॉ. बी.एन. पांडेय**
स्वतंत्रता सेनानी, बी-68, हरदेव नगर, दिल्ली-84

www.terapanthinfo.com

विजयी होती सदा अहिंसा

जीव-जन्तु, पशु-पक्षी मानव,
सब में है ईश्वर की छाया।
वह सबका जीवन दाता है,
सारा जग उसकी ही माया।

जीने का अधिकार सभी को,
दुर्बल हो या हो बलशाली।
हाथी से चींटी तक की प्रभु।
करते रहते देखा-भाली।

न्याय सभी के लिये बराबर
अत्याचार न होने पाये,
कोई अपने बल पौरुष से-
नहीं किसी को कभी सताये।

खून-खराबा बुरी बात है,
हत्या करना महापाप है।
हिंसा सब पापों की जननी,
वह मानवता का अभिशाप है।

हिंसक को हिंसा खा जाती,
वह जीवन में शांति न पाता।
अपनी करनी पर सिर धुनता,
अन्तकाल तक वह पछताता।

गौतम ने जग को दिखलाया,
कितनी सबल अहिंसा होती।
बड़े, बड़े क्रोधी खूनी को,
वह अपने वश में कर लेती।

क्षमा, दया में अद्भुत बल है,
हार गयी है उससे हिंसा
बापू का संदेश अमर है-
विजयी होती सदा अहिंसा।

● **शंकर सुल्तानपुरी**
'साहित्य वाटिका', 13/362, इंदिरानगर,
लखनऊ 226016 (उ.प्र.)

झाँकी है हिन्दुस्तान की

✦ हर तीसरा भारतीय भ्रष्ट

आज की स्थिति में देश के लगभग एक तिहाई लोग याने हर तीन में से एक भारतीय भ्रष्टाचार में लिप्त है। मुश्किल से बीस फीसदी लोग ही ऐसे होंगे जो अंतरात्मा की शक्ति के बल पर ईमानदारी से जिंदगी जी रहे हैं। पहले अगर कोई व्यक्ति भ्रष्ट पाया जाता था तो इसे सामाजिक कलंक माना जाता था, लेकिन धीरे-धीरे समाज ने भ्रष्टाचार की बीमारी को सामाजिक स्वीकार्यता दे दी है। आधुनिक भारत में जिस व्यक्ति के पास जितना अधिक धन होता है, उसे उतना ही सम्मानजनक माना जाता है, लेकिन कोई यह प्रश्न नहीं उठाता कि उसने इतना धन कैसे कमाया है?

केन्द्रीय सर्तकता आयोग के आयुक्त कार्यकाल के दौरान मेरा सबसे खराब पहलू यह निरीक्षण करना रहा है कि सुविधाओं के बढ़ने के साथ भ्रष्टाचार में कैसे बढ़ोतरी हो रही है। पारदर्शिता अन्तर्राष्ट्रीय की रिपार्ट के अनुसार दुनिया के सर्वाधिक भ्रष्टाचारी देशों की सूची में भारत 84वें स्थान पर है और हमारा भ्रष्टाचार इंडेक्स 3.4 है।

प्रत्युष सिन्हा
सेवानिवृत केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त

✦ सबसे अमीर-गरीब मंत्री

केन्द्रीय नागरिक उड्डयन मंत्री प्रफुल्ल पटेल सबसे अमीर केन्द्रीय मंत्री है जिनके पास करीब 33 करोड़ रु. की सम्पति है। जबकि रेलमंत्री ममता बनर्जी आज भी गरीब है जिनकी संपती केवल 6.7 लाख रु. है। मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल 20 करोड़ रु., शहरी विकास मंत्री ज्योतिरादित्य सिंधिया 20 करोड़ रु. एवं कृषि मंत्री शरद कुमार 3.9 करोड़ रु. की सम्पति के मालिक है।

प्रधानमंत्री कार्यालय

✦ जम्मू-कश्मीर के पुंछ जिले के मंढेर कस्बे में भीड़ ने अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा चलाए जाने वाले एक स्कूल को जलाने की कोशिश की। इस कार्रवाई में 3 लोग मारे गए और 10 अन्य घायल हुए। इलाके में कर्फ्यू लगाया गया है। उपद्रवी अमेरिका में धार्मिक पुस्तक को नुकसान पहुंचाने की कथित घटना का विरोध कर रहे थे।

www.terapanthinfo.com

अहिंसा दिवस : भारत का राष्ट्रीय पर्व

डॉ. कपूरचंद जैन

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने महात्मा गांधी के जन्मदिवस 2 अक्टूबर को 'अहिंसा दिवस' के रूप में घोषित किया। अब सम्पूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष 2 अक्टूबर अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जायेगा। भारत के लिए यह अत्यन्त गौरव का विषय है क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में जैन धर्म-दर्शन की पहचान अहिंसा दर्शन के रूप में की जाती है। एक प्रकार से जैन धर्म-दर्शन और अहिंसा पर्यायवाची से हो गये हैं। महात्मा गांधी ने आधुनिक युग में अहिंसा और सत्य के ऐसे-ऐसे प्रयोग किये जो अनूठे हैं। गांधीजी के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि अहिंसक क्रान्ति के द्वारा भारत वर्ष को आजादी दिलाना है।

गांधीजी को अहिंसक संस्कृति बचपन से ही मिली, उनके घर जैन साधुओं का आवागमन प्रायः होता रहता था। जैन धर्मानुयायियों से भी उनका निकट का सम्पर्क था। गांधीजी जब अध्ययनार्थ विदेश जाने लगे और उनकी माता ने उन्हें इस भय से भेजने में आना-कानी की कि विदेश में जाकर यह मांस-मदिरा भक्षण करेगा, तब जैन मुनि बेचरजी स्वामी ने उन्हें मांसादि सेवन न करने की प्रतिज्ञा दिलाई थी। स्वयं गांधीजी ने अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में लिखा है ''बेचरजी स्वामी मोढ बनियों में से बने हुए एक जैन साधु थे...., उन्होंने मदद की। वे बोले ''मैं इस लड़के से उन तीन चीजों के व्रत लिवाऊंगा। फिर इसे विदेश जाने देने में कोई हानि नहीं होगी।'' उन्होंने प्रतिज्ञा लिवाई और मैंने मांस, मदिरा तथा स्त्री संग से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। माता जी ने फिर विदेश जाने की आज्ञा दी।' (पृ. 32)

इसी प्रकार गांधीजी के जीवन में प्रसिद्ध आध्यात्मिक जैन संत श्रीमद् रायचन्द्र का गहरा प्रभाव था। जब दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी को हिन्दू धर्म पर अनेक शंकायें हुईं और उनकी आस्था डिगने लगी तब अपनी लगभग 33 शंकाएं गांधीजी ने रायचन्द्रजी को भेजीं। रायचन्द्रजी ने उनके जो उत्तर दिये उनसे गांधीजी की सत्य और अहिंसा में दृढ़ आस्था हो गई। गांधीजी ने उन्हें अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है और अनेक बार उनके ज्ञान की प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है ''मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव डालने वाले आधुनिक पुरुष तीन हैं। रायचन्द्र भाई ने अपने सजीव सम्पर्क से, टॉलस्टाय ने 'बैकुण्ठ तेरे हृदय में' नामक अपनी पुस्तक से और रस्किन ने 'अन्टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) नामक पुस्तक ने मुझे चकित कर दिया।'' (पृ. 76)। ''श्रीमद् रायचन्द्र'' पुस्तक की प्रस्तावना गांधीजी ने लिखी है। गांधीजी ने जिस अहिंसक युद्ध के बल पर देश को आजादी दिलाई उसका मूल भरत और बाहुबली के युद्ध में देखा जा सकता है।

2 अक्टूबर को अहिंसा दिवस मनाने का प्रस्ताव जैन समाज ने नहीं, अपितु भारत सरकार ने भेजा यह भी एक महत्ती उपलब्धि है। साथ ही संयुक्त राष्ट्र महासंघ द्वारा इस प्रस्ताव को बिना मतदान के ही अपना लेना भी महत्त्वपूर्ण है। ध्यातव्य है कि भारत के तीन ही राष्ट्रीय पर्व हैं। स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त), गणतंत्र दिवस (26 जनवरी) और गांधी जयंती (2 अक्टूबर), इस प्रकार **अहिंसा दिवस** भारत का राष्ट्रीय पर्व हो गया है।

अहिंसा एक ऐसा भाव/कर्म/अस्त्र है, जिसके लिए कोई दिन घड़ी, घंटा, मिनट निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह तो सदा रहने वाला भाव है। फिर भी हम अहिंसा दिवस पर अपने वर्ष भर के हिंसक/अहिंसक भावों का लेखा-जोखा कर सकते हैं। अन्य लोगों को अहिंसक बनने की प्रेरणा दे सकते हैं। इस आलोक

में आगामी अहिंसा दिवस पर निम्न कार्य किये जा सकते हैं/किये जाने चाहिये

- 2 अक्टूबर को 'अहिंसा' विषय पर गोष्ठी आयोजित करें।
- संभव हो तो अहिंसा रैली निकालें।
- रात्रि में लघु नाटक, कवि सम्मेलन इत्यादि का आयोजन करें।
- महिला संगठन 'महिलायें घर और भोजनशाला में कैसे अहिंसक बनें विषय पर भाषण प्रतियोगिता रख सकते हैं।
- अहिंसा दिवस के शुभकामना-पत्र अपने संबंधियों/मित्रों/अन्य महानुभावों को भेजें।
- मोबाइल पर निम्न एसएमएस भेंजें

  अपने स्वभाव का चिंतन करें।

  कम से कम एक व्यक्ति को अहिंसक बनायें।

  अपने सबसे प्रिय मित्र से अहिंसा के संदर्भ में चर्चा करें।

  किसी अन्धे व्यक्ति को सड़क पार करायें।

  जीवों के प्रति दया व करुणा का भाव रखें।

  जिसे आपने कष्ट पहुंचाया हो आज उसके कष्टों को दूर करने के संदर्भ में चिंतन करें।

  हम अहिंसक बनें, आइये अहिंसा के संदर्भ में चिंतन करें।

  मैं अहिंसक हूं आप भी बनें। आदि

आइये! विश्व अहिंसा दिवस को हम जोर-शोर से मनायें।

रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
श्री कुंदकुंद जैन पी.जी. कॉलेज,
खतौली 251201 (उ.प्र.)

अहिंसा के लिए शिक्षा

डॉ. जमनालाल बायती

आज जब अहिंसा के लिए शिक्षा की बात की जाती है तब कई प्रश्न सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं। कोई भी आदमी पूछ सकता है कि क्या शिक्षा अहिंसा के सिवाय भी अन्य किसी बात का प्रयोजन के लिए साधन हो सकती है? जब शिक्षा के उद्देश्यों, कार्यों तथा प्रयोजनों पर विचार किया जाता है तो स्पष्ट होता है कि शिक्षा का प्रयोजन मानव में ज्ञान, दक्षता, कुशलता अभिवृत्तियों व मूल्यों का विकास करना है। भिन्न शब्दों में इसका अभिप्राय यह भी लिया जाता है कि शिक्षा का सम्बन्ध मानव की प्रकृति में व्याप्त श्रेष्ठता से है। अहिंसा की अभिवृत्ति भी मानव के श्रेष्ठ गुणों में से एक है जिसे वह पल्लवित एवं पुष्पित कर सकती है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा की अभिवृत्ति का विकास करना भी शिक्षा के कई उद्देश्यों में से एक है पर पीड़ादायक बात तो यह है कि आजकल शिक्षा न केवल इस उद्देश्य की पूर्ति कर पा रही है वरन् यह इससे कोसों दूर होती जा रही है। हिंसा का आज सर्वत्र ताण्डव नृत्य दिखाई देता है। शिक्षा संस्थाएं भी सभी प्रकार की हिंसा से आक्रान्त हो रही हैं। शिक्षा आक्रोश से भरी हुई है। नियोजक अशान्त और विद्यार्थी निराशा में आकण्ठ डूबे हुए हैं। इतना ही नहीं सर्वत्र लड़ाई-झगड़े, संघर्ष, तोड़फोड़ और यहां तक कि उपद्रव आज के युग में शिक्षा जगत् की सामान्य घटनाएं बन गई हैं। यहां प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि सरस्वती के मंदिरों में यह सब क्या हो रहा है? क्या इस सबके लिए शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था या उनका प्रबंधन या स्वयं की शिक्षा ही उत्तरदायी है? या यह सब विश्व में और बाहरी जगत में होने वाली घटनाओं का प्रतिबिम्ब है? ऐसे ही अनेक प्रश्न एक प्रबुद्ध नागरिक को यह सोचने के लिए बाध्य करते हैं कि शिक्षा और अहिंसा के मध्य क्या सम्बन्ध हो।

अहिंसा के बजाय हिंसा पर बात करना अपेक्षाकृत अधिक सरल है। चारों ओर हिंसा ही हिंसा दिखाई देती है। इससे आज कोई अछूता नहीं हैं व्यक्ति, व्यक्तियों के समूह, संस्थाएं, दल और समाज के सभी वर्ग हिंसा रूपी सुरसा के मुंह का ग्रास बने हुए हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हिंसा जीवन की एक शैली बन गई है। हिंसा का निकृष्टतम या विकृततम रूप है अपने को अन्यों पर थोपना या अपनी बात को बलपूर्वक सामने वाले पर लादना या बलपूर्वक उससे मनवाना। यह प्रवृत्ति मानव व पशुओं में समान रूप से पाई जाती है। नृशास्त्रियों ने इस प्रवृत्ति तथा इसके विकास के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों का (भी) विशद्, व्यापक तथा गहन अध्ययन किया है। इन शास्त्रियों ने अपने को दूसरों पर बलपूर्वक स्थापित करने की मानव प्रकृति के उद्भव, विकास और विभिन्न रूपों पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। वस्तुतः मनुष्य की यही प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते उत्पीड़न का रूप ले लेती है। हिंसा की इस प्रवृत्ति में देखा जा सकता है। यह सत्य है कि 1945 के बाद कोई विश्व युद्ध नहीं हुआ है, पर यह भी उतना ही सत्य है कि विश्व में कहीं न कहीं युद्ध तब से हो ही रहे हैं। मानव सभ्यता का इतिहास यह प्रमाणित करने में निरंतर असमर्थ है कि मानव की हिंसक प्रवृत्ति में कमी आई है या उसका ह्रास हुआ है प्रत्युत्तर वह यह अवश्य सिद्ध करता है कि मानव को उपलब्ध या उसमें निहित पाश्विक प्रकृति ही उस पर हावी रही है। महावीर, बुद्ध, ईसा मसीह और गांधी जैसे अहिंसा के पुजारियों के समस्त प्रयासों के बाद भी विश्व में सर्वत्र लड़ाई-झगड़े, संघर्ष, युद्ध, हत्याएं तथा विनाश का बोलबाला है। नेताओं, धर्माचार्यों, संत-महात्माओं के प्रयासों व प्रवचनों के बावजूद मानव की पाश्विक प्रवृत्ति में कोई विशेष स्पष्ट दिखने जैसा अंतर नहीं आया है। आदिकाल से मानव वैसा का वैसा ही है फिर भी राजनेता बढ़-चढ़कर बातें करते हैं कि मानव ने उन्नति की है, वह सभ्य हो गया है और वह सुशिक्षित बन गया है। ये सब बातें यह पूछने के लिए व चिंतन करने के लिए बाध्य करती हैं कि मानव जीवन और सभ्यता के विकास की क्या दिशा है या कोई दिशा है भी या नहीं।

यह ठीक समझ लिया जाना चाहिए कि हिंसा की अनुपस्थिति का अर्थ अनिवार्यतः यह नहीं है कि अहिंसा की स्थिति प्राप्त हो गई है। इन दोनों के बीच तटस्थता की स्थिति भी हो सकती है। इसलिए अहिंसा की प्रवृत्ति हिंसा की नकारात्मक रूप मात्र ही नहीं है अर्थात् अहिंसा हिंसा का विरोधी भाव मात्र नहीं है।

हां, यह जरूर है कि अहिंसा की अभिवृत्ति हिंसा को नकारती है। संकुचित अर्थों में इसे हिंसा का विलोम ही कहा जा सकता है। इसके स्वरूप को भारतीयों ने महात्मा गांधी के कार्यों में अभिव्यक्त होते हुए देखा है। अतः अहिंसा की परिभाषा देने की कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी अहिंसा को सहानुभूति, सहयोग, करुणा, दया और प्रेम की अभिवृत्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित करुणा तथा मैत्री के गुण अहिंसा की व्याख्या करते हैं। जबकि डार्विन का विकासवाद (जीवन के लिए संघर्ष और सबल का जीवित रहना) का सिद्धांत इस बात का द्योतक है कि मानव को जीवित रहने तथा अपने को अपने ही सरीखे अन्य साथियों पर स्थापित करने के लिए उन पर बल प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है, पर इसका अभिप्राय यह भी नहीं है कि वह हिंसक बन जाए।

इसी तरह अस्तित्व के लिए संघर्ष का भी यह अभिप्राय नहीं है कि अपने को सुरक्षित रखने या अपनी सुरक्षा का बीमा करने के लिए दूसरों के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया जाए। परन्तु औद्योगिकीकरण और व्यापारिक प्रतिस्पर्धा यह सिद्ध कर रही है कि डार्विन का सिद्धांत 'सबल जीवित रहते हैं' पर्याप्त रूप में सही है क्योंकि आद्योगिकीकरण के कारण आर्थिक शोषण में बेतहाशा वृद्धि हुई है।

यह होते हुए भी इतना तो मानना पड़ेगा कि जीवन का सारतत्व जीवन को आगे बढ़ाना है न कि जीवन को विनष्ट करना। इस परिप्रेक्ष्य में और आणविक शस्त्रों के भय व आतंक के परिप्रेक्ष्य में यह चिंतन प्रथम स्थान पर महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार शिक्षा मनुष्य को अहिंसक बनाने में अपना योगदान दे सकती है और किस तरह भविष्य में अहिंसक समाज रचना या व्यवस्था स्थापित करने में सहायक हो सकती है।

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी क्षमताओं का विकास कर सकता है तथा अपनी मानसिक शक्तियों की अभिवृद्धि कर सकता है। शिक्षा मानव में आत्म नियंत्रण की शक्ति का विकास करती है। वंशानुकरण संबंधी अध्ययनों से यह प्रमाणित नहीं हो सका है कि मानव की सभी आक्रामक एवं विध्वंसक प्रवृत्तियां जन्म से उसमें पाई जाती हैं या जन्मजात रूप में निर्धारित होती हैं। बुद्धि की तरह ही मनुष्य का आक्रामक व्यवहार आंशिक रूप से वंश परम्परा से तथा आंशिक रूप से पर्यावरण से प्रभावित होता है। शरीर-रचना वैज्ञानिकों तथा ग्रंथि विशेषज्ञों ने आक्रामक व्यवहार के लिए मस्तिष्क के योगदान की संभावना व्यक्त की है। इसके साथ ही उनका मानना है कि रक्त में विद्यमान या उपलब्ध रासायनिक तत्व भी आक्रामक व्यवहार के लिए उत्तरदायी हो सकते हैं।

इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि हिंसा तथा विध्वंस की या विनाशकारी प्रवृत्तियों के लिए कौन उत्तरदायी होता है पूर्णतः प्रामाणिक तथ्यों से पुष्ट नहीं है और इस सम्बन्ध में अधिकारिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस चिंतन के दूसरे पक्ष पर भी विचार किया जाना चाहिए। ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं जो यह सिद्ध तो नहीं करते पर संकेत करते हैं कि मनुष्य में पाई जाने वाली आक्रामक प्रवृत्ति उपयुक्त शैक्षिक वातावरण तथा अनुभवों से नियंत्रित एवं परिशोधित की जा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य की शान्ति संबंधी जन्मजात प्रवृत्ति को विशेष प्रकार के अनुभवों से पल्लवित एवं पुष्पित किया जाए, ऐसे अनुभवों की पहचान की जाए तथा शिक्षा के माध्यम से उन्हें विकसित होने के अवसर प्रदान किए जाएं। इस दृष्टि से ही अहिंसा के लिए शिक्षा के योगदान को समझा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि बच्चे को प्रारंभ से ही विशेष प्रकार के व्यवहार हेतु प्रशिक्षित किया जा सकता है। मनुष्य के आक्रामक व्यवहार को आंतरिक नियामक तंत्र को समुचित रूप से विकसित कर शिक्षा के माध्यम से नियंत्रित करने की प्रबल संभावना है।

शिक्षा आज दक्षताओं के प्रशिक्षण तक सीमित हो गई है। वे दक्षताएं मानव को रोटी-रोजी कमाने के योग्य तो बनाती हैं और आज शिक्षा का लाभप्रद व्यवसाय के साथ सम्बन्ध जोड़ने के प्रयास जोरों पर है। भारत सहित अन्य देशों के विचारकों ने व्यावसायिक शिक्षा को शिक्षा का आवश्यक अंग बनाने में प्रयास किए हैं। इसके साथ ही यह भी माना गया है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का मानसिक एवं शारीरिक विकास करना है। इस दृष्टि से आर्थिक शक्तियां जीविकोपार्जन के लिए मोटे रूप से ज्ञान प्राप्ति एवं दक्षता-अर्जन जरूरी स्वीकार किए जा रहे हैं। आज शिक्षा संस्थाओं से वे लोग पढ़ लिख कर निकलते हैं जिन्हें शोषण की विभिन्न विधियों एवं तकनीकों में प्रशिक्षित किया गया है। ये लोग न केवल प्रकृति का ही दोहन-शोषण कर रहे हैं, पर वे अपने चारों ओर रह रहे अपने ही जैसे नागरिकों का भी शोषण कर रहे हैं। वस्तुतः यह बड़ा ही चिन्ता का विषय है। स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है कि गरीबों के लिए तो रोटी ही भगवान् है। ऐसे में वे लोग शिक्षा के किसी भी स्वयप, चाहे वह औपचारिक शिक्षा हो चाहे अनौपचारिक अथवा प्रौढ़ शिक्षा, के प्रति तब तक आकर्षित नहीं हो सकते जब तक वह उन्हें रोजी रोटी कमाने के योग्य न बनाए। वर्तमान समाज में आर्थिक कुशलताओं का सम्बन्ध शोषण से जोड़ा जाता है। अतः जो भी शिक्षा पद्धति होगी उसका लक्ष्य व्यक्ति को शोषण करना सिखाना होगा और शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था से अहिंसक बनने की या होने की अपेक्षा कैसे की जा सकती है?

गांधीजी ने अपनी बुनियादी तालीम में हस्तकला को, सीखने की प्रक्रिया में आवश्यक अंग बनाया था। उनके विचार में कताई-बुनाई व फसल काटने की दक्षताओं का महत्व इसलिए था कि इन्हें सीखकर बच्चे समुदाय में भाग लेने के योग्य बनते हैं, अतः अब ज्ञान व कौशल के अर्जन के लिए शिक्षा को ही माध्यम नहीं मानना चाहिए क्योंकि शिक्षा जब तक साधन से सम्बद्ध रहेगी तब तक वह सामाजिक परिवर्तन का साधन या माध्यम नहीं बन सकती।

अहिंसा के लिए शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम एवं शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता है। अहिंसक व्यवहार तब ही अभिप्रेरित किया जा सकता है जब चेतना को जागृत किया जा सके। यदि चेतना नहीं है या चेतना को क्रियाशील नहीं किया जाता तो अहिंसा की अपेक्षा करना गलत होगा। यदि आज शैक्षिक परिदृश्य पर दृष्टिपात करें तो लगता है कि न तो शिक्षा के पाठ्यक्रम में और न ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में व्यक्तियों की चेतना को जगाने का कोई प्रयास भी है। चेतना की जागृति के लिए वैचारिक मंथन, मस्तिष्कों की टकराहट, सामाजिक जीवन में मानव प्राणियों के भावों, विचारों तथा आदान-प्रदान, मानव व्यवहार के नैतिक

पक्ष की समझ की आवश्यकता होती है। स्थिति यह है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम विषय वस्तु परक हैं। पाठ्यचर्या, विषयवस्तु व परीक्षा, आज की शिक्षा व्यवस्था के छात्र, अध्यापक एवं प्रशासक की दृष्टि से संचालन हेतु महत्वपूर्ण तंत्र है। इनमें पर्याप्त परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

यदि शिक्षा को सही अर्थों में अहिंसा के लिए शिक्षा बनाना है और यदि इसे साधन की अपेक्षा साध्य से सम्बद्ध करना है तो इसके पाठ्यक्रम तथा सम्पूर्ण अनुदेशन प्रणाली में परिणाम के स्थान पर प्रक्रिया पर बल की स्पष्ट झलक होनी चाहिए। सिर्फ विषयवस्तु के ज्ञानार्जन तथा कौशल सीखने की अपेक्षा अधिगम प्रक्रिया, ज्ञान और कौशल के अर्जन की प्रक्रिया तथा जीवनयापन सीखने आदि की प्रक्रिया ज्यादा महत्वपूर्ण होनी चाहिए। इसी तरह मूल्यांकन हो, न कि परिणाम का। आज की परीक्षा प्रणाली का सम्बन्ध केवल-ज्ञान से है। इसलिए अब आवश्यकता है कि अतीत की तरह मूल्यांकन का भार अध्यापक को सौंपा जाए जिससे वह प्रक्रिया का निरंतर मूल्यांकन कर सके तथा अवलोकन के आधार पर वह छात्र का समग्र रूप से मूल्यांकन कर सके।

तीसरा परिवर्तन जो अनुदेशन प्रक्रिया या व्यवस्था में करना है वह है प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग पर अधिक बल दिया जाए। विद्यालय में दिया जाने वाला कार्य वैयक्तिक न होकर सामूहिक होना चाहिए। सामूहिक कार्य से ही छात्र सहयोग का मूल्य समझेंगे। सहकारी रूप में कार्य करने में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी और अन्यों की अहम् की टकराहट का सामना करना पड़ेगा। अहम् की भावनाओं पर सामूहिक स्वामित्व से ही व्यक्ति अहिंसक व्यवहार करना सीखना प्रारंभ करता है, पर वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सहयोग के स्थान पर प्रतिस्पर्धा, होड़, प्रतिद्वन्द्विता आदि पर अधिक बल दिया जाता है।

अंत में एक और परिवर्तन वांछनीय है। अहिंसा के लिए शिक्षा को 'तर्क ही श्रेष्ठ है।' के सम्प्रत्यय पर आधारित होना चाहिए। इसलिए सम्पूर्ण पाठ्यक्रम एवं अनुदेशन-व्यवस्था में विवेक व तर्क पर विशेष बल होना चाहिए। अतः यह आवश्यक है कि विषयवस्तु के अनुदेशन, कौशल, प्रशिक्षण और चरित्र निर्माण के मामलों में ऐसी व्यवस्था हो कि छात्र तर्क की प्रक्रिया से गुजर सके तथा हल ढूंढने में तर्क का सहारा ले सकें। जब तक व्यक्ति तर्क के स्थान पर भावना से कार्य करेगा तब तक उसके शोषण करने तथा अन्य लोगों द्वारा उसके शोषित होने की प्रबल संभावना रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति शत-प्रतिशत तर्कशील बन जाएगा। ऐसा सोचना तो विवेकपूर्ण तथा न्यायसंगत नहीं है, पर यदि शिक्षा संबंधी कार्य इस दिशा में उन्मुख हो सके तथा शिक्षा का सम्बन्ध साधन के स्थान पर साध्य से जुड़ सके और सहयोग को एक मूल्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाए तो निश्चय ही छात्र तर्कशील हो सकेंगे और तब ही सम्पूर्ण पाठ्यक्रम में ये मूल्य दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। इसके दूसरी ओर एक निश्चित अवधि में कुछ ज्ञानात्मक विषय-वस्तु पर प्रभुत्व करने की व्यवस्था की गई है। कुछ ही क्षणों में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह में ज्ञान बांट देने का प्रयास किया जा रहा है। आज की परीक्षा प्रणाली भी ऐसी है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया में परिवर्तन किया जाए और समाज-व्यवस्था, शिक्षा-शास्त्री तथा सरकार इस कार्य में अपेक्षित सहयोग प्रदान करें।

बी-186, डॉ. राधाकृष्ण नगर
भीलवाड़ा 311001 (राज.)

अहिंसा समवाय गीत

अहिंसा सव्व भूय खेमंकरी का समवेत सुस्वर हमारा है,
भाग हमारे जागे जो-मिली हमें महाप्रज्ञ करुणाधारा है।
सत्य अहिंसा अपरिग्रह को
साध-सुपथ पर बढ़ते जाना
अहिंसा से समवाय साधकर
स्वर्ग धरा पर ले आना।
अहिंसा यात्रा के सुपरिणामों से अवगत संसार सारा है,
शूल हटाना फूल विछाना पथ में प्यारा लक्ष्य हमारा है।
हम अनेकता में एकात्म भाव साधें
धन का सदा सीमान्त उपयोग करें
शांति का होगा सतत-विकास
प्रवृत्ति-निवृत्ति का सुयोग करें
अहिंसा चेतना के सौंदर्य को मिल बैठ आज हमने संवारा है,
असंयम की आंधी में सच मानो संयम ही एक सहारा है।
लेकर अहिंसा का सुशिक्षण
नैतिक जागरण के अग्रदूत बनो
बनकर श्रमण श्रमणी जग में
समता-ममता के अवधूत बनो
जागो और जगाओ यह उत्तरदायित्व आज हमारा है,
बन भागीरथ लाओ गंगा प्यासा जगतीतल सारा है।

■ **बंशीलाल "पारस"**
ट-14, बापूनगर,
भीलवाड़ा (राजस्थान) 311001

महात्मा गांधी के प्रेरक विचार

प्रस्तुति : डॉ. रामसिंह यादव

केन्द्र में बैठे व्यक्तियों द्वारा प्रजातंत्र को नहीं चलाया जा सकता। उसे तो हर एक गांव की जनता द्वारा नीचे से ही चलाना पड़ता है। बापू ने कहा था

- अहिंसा और प्रेम एक ही चीज है।
- अहिंसा और सत्य मेरा ईश्वर है। जब मैं अहिंसा को ढूंढता हूं तो सत्य कहता है मेरे द्वारा उसे खोजो, जब मैं सत्य की तलाश करता हूं तो अहिंसा कहती है मेरे जरिये उसे खोजो।
- अहिंसा के बिना सत्य की खोज और प्राप्ति असंभव है।
- हम जिस हद तक अहिंसा को सिद्ध करते हैं उतनी ही हद तक ईश्वर के सदृश बनते हैं, परन्तु हम ईश्वर कभी नहीं बन सकते।
- क्षमा, अहिंसा, प्रेम और सत्य के सद्गुणों की परीक्षा किसी मनुष्य में तभी हो सकती है जब उनका मुकाबला क्रूरता, हिंसा, वैर और असत्य आदि से होता है।
- मानव जाति को अहिंसा के द्वारा ही हिंसा से छुटकारा पाना होगा। घृणा को प्रेम से ही जीता जा सकता है। बदले में घृणा करने से घृणा का विस्तार और गहराई दोनों बढ़ते हैं।
- हिंसा क्या है? उतावलापन-हड़बड़ाहट हिंसा है। मिथ्या भाषण हिंसा है। किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जिसकी दुनियां को जरूरत है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है।
- मनुष्य को पशु-पक्षियों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ है वह उन्हें मार कर खाने के लिए नहीं, बल्कि उनकी रक्षा के लिए है अथवा जिस प्रकार मनुष्य एक-दूसरे का उपयोग करते हैं, एक दूसरे को खाते नहीं, इसी प्रकार पशु-पक्षी भी उपयोग के लिए है, खाने के लिए नहीं।
- आघात के बदले में आघात न करना ही मनुष्य के लिए स्वाभाविक स्थिति है।
- अच्छे उपायों से ही अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। और सब में नहीं तो अधिकांश मामलों में प्रेम और दया का बल, शस्त्र बल से कहीं बड़ा होता है। पशु बल के प्रयोग में हानि है, मगर क्षमा बल के प्रयोग में कभी नहीं।

प्रजातंत्र.....?

- किसी को अपने विचार दूसरों पर नहीं थोपने चाहिए। लोकशाही (प्रजातंत्र) में जनता सरकार बना और बिगाड़ सकती है। वह उसे सशक्त या दुर्बल बना सकती है।
- न्याय को सस्ता तथा शीघ्रता से प्राप्त किया जाने वाला बनाना और शासन करना प्रजातंत्र का काम है।

सेवा.....?

- ईश्वर की पहिचान सेवा से ही होगी। यह मानकर मैंने मानव सेवा धर्म स्वीकार कर लिया।
- सेवा के दाम नहीं लिये जा सकते।
- सार्वजनिक सेवक के लिए निजी भेंट नहीं हो सकती।
- जो स्वार्थ छोड़ने के लिए तैयार नहीं है उसके लिए अलबत्ता सेवा कार्य कठिन है।
- निष्काम सेवा परोपकार नहीं अपना-अपना उपकार है।
- सेवा में अपनी सुविधा के विचार को कोई स्थान नहीं है। सेवक की सुविधा को देखने वाला स्वामी ईश्वर है।
- जो अपने मानव बंधुओं की सेवा करता है, उसके हृदय में निवास करने की भगवान स्वयं इच्छा करते हैं।
- सेवा और अत्यंत सादगी का जीवन उत्तम उपदेश है, गुलाब के फूल को उपदेश देने की जरूरत नहीं पड़ती, वह सिर्फ अपनी सुगंध फैलाता है। वह सुगंध ही उसका अपना उपदेश है।
- दुःखी और पीड़ित कौन है? दलित है और गरीबी के मारे लोग, इसलिए जो भक्त बनना चाहता है उसे इन लोगों की तन-मन और आत्मा से सेवा करनी चाहिए।
- सेवा तब तक संभव नहीं, जब तक उसका मूल मंत्र प्रेम या अहिंसा न हो।
- जो सेवा करना चाहता है वह अपने आराम का विचार करने में एक क्षण भी खर्च नहीं करेगा, क्योंकि उसे वह प्रभु की मर्जी पर छोड़ देता है।

14 उर्दूपुरा, उज्जैन (म.प्र.)

आज की आवश्यकता हिंसा या अहिंसा

अजीतकुमार अजमेरा

शरीर, वाणी अथवा मन से काम-क्रोध-लोभ-मोह-भय आदि की मनोवृत्तियों के साथ किसी प्राणी को शारीरिक, मानसिक पीड़ा अथवा हानि पहुंचाना या पहुंचवाना या उसकी अनुमति देना या स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से उसका कारण बनना हिंसा है, इससे बचना अहिंसा है।

शिक्षार्थ प्रताड़ना देना, रोग-निवारणार्थ औषधि देना अथवा ऑपरेशन करना, सुधारार्थ या प्रायश्चित के लिए दण्ड देना हिंसा नहीं है, यदि वे बिना द्वेष आदि के केवल प्रेम से उनके कल्याणार्थ किये जायें। पर यही जब द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आदि की मनोवृत्तियों से मिश्रित हों तो हिंसा हो जाती है। प्राणों का शरीर से वियोग करना सबसे बड़ी हिंसा है।

अहिंसा का पालन मन, वाणी, कर्म तीनों के द्वारा किया जाना चाहिए। मन में किसी के प्रति क्रोध प्रतिकार की भावना हिंसा का विचार पैदा करती है। हिंसा केवल किसी के प्राण ले लेना ही नहीं है। शारीरिक, मानसिक या भौतिक कष्ट पहुंचाना भी हिंसा है। हिंसक विचार जब वाणी में प्रतिबिम्बित होते हैं, वाणी कठोर हो जाती है, परिणामतः कर्म के रूप में चरितार्थ होती है। यदि किसी व्यक्ति विशेष की हिंसा होती है, तो उसके साथ प्रतिहिंसा भी जुड़ी हुई है और हिंसा की परंपरा दोनों पक्षों को विनाश और हानि के अतिरिक्त कुछ नहीं देती। इसीलिए सभी धर्मों में अहिंसा की मान्यता है परन्तु जैनधर्म में ''अहिंसा परमोधर्म'' कहकर इसको विशेष महत्व दिया गया है।

भगवान महावीर ने अठारह धर्म-स्थानों में सबसे पहला स्थान अहिंसा का बतलाया है। सब जीवों के साथ संयम से व्यवहार रखना अहिंसा है, वह सब सुखों को देने वाली मानी गयी है। संसार में जितने भी चर और स्थावर प्राणी हैं, उन सबको जाने और अनजाने में न स्वयं मारना चाहिए और न दूसरों से मरवाना चाहिए। जो मनुष्य प्राणियों की स्वयं हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है, वह संसार में अपने लिए वैर को बढ़ाता है। संसार में रहने वाले चर और स्थावर जीवों पर मन से, वचन से और शरीर से किसी भी तरह दण्ड का प्रयोग नहीं करना चाहिये। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। भय और वैर निवृत्त मनुष्य, जीवन के प्रति मोह-ममता रखने वाले सब प्राणियों को सर्वत्र अपनी ही आत्मा के समान जानकर उनकी कभी भी हिंसा न करनी चाहिए। सभी जीव दुःख से घबराते हैं ऐसा जानकर उन्हें दुःख न पहुंचावे। हिंसा से उत्पन्न होने वाले वैर-वर्धक एवं महा भयंकर दुःखों को जानकर अपने को पाप-कर्मों से बचायें। संसार में प्रत्येक प्राणी के प्रति फिर वह शत्रु हो या मित्र-समभाव रखना और सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना चाहिए।

अहिंसक जीवन-शैली का एक महत्वपूर्ण सूत्र है सुविधावादी जीवन शैली में परिवर्तन। जब तक इच्छा का संयम नहीं होता, जीवन शैली में संयम को प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी, तब तक अहिंसा की बात का सार्थक परिणाम नहीं आ सकेगा।

जीवन शैली का अनिवार्य अंग होना चाहिए श्रम की प्रतिष्ठा। श्रम निष्ठा और स्वावलंबन का सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति की जीवन शैली का मुख्य अंग होना चाहिए।

मनुष्य में लालच है, बहुत पाने की इच्छा। वह श्रम कम करना चाहता है, धन अधिक पाना चाहता है। इस मनोवृत्ति से अपराध को बढ़ावा मिलता है। अपराध और हिंसा को बढ़ाने में एक बड़ा निमित्त है मादक द्रव्यों का सेवन। अहिंसा के विकास के लिए आवश्यक है जीवन शैली व्यसन से मुक्त हो।

अहिंसक जीवन शैली के लिए संयम, स्वावलम्बन और व्यसनमुक्त जीवन का होना अपेक्षित है। अहिंसा को विकसित किये बिना विश्व शांति कभी भी नहीं हो सकती।

67, उषागंज मेनरोड़ छावनी
इंदौर 452001 (मध्यप्रदेश)

अहिंसा के प्रति आसक्ति

शत्रु के विरुद्ध
सबसे जोरदार लड़ाई लड़ी जाती है
देश के खेतों में खलिहानों में
कल-कारखानों में
वह भी खून की एक भी बूंद नहीं बहाये बिना।
क्या यह नहीं है युद्ध से विरक्ति
अहिंसा के प्रति सच्ची आसक्ति।

● **दुर्गाशंकर त्रिवेदी**
त्रिवेदी आध्यात्मिक शोध संस्थान, बोयतावाला
पोस्ट नींदड़ बैनाड़, वाया झोटवाड़ा, जयपुर 302012 (राजस्थान)

अभय का अस्त्र : अहिंसा

साध्वी स्वर्णरेखा

प्रत्येक मनुष्य के भीतर अनन्त शक्तियां निहित हैं। यदि उस शक्ति का वह उपयोग रचनात्मक दिशा में करता है तो वह सफलता को प्राप्त कर लेता है। सफलता के मापदंड का आधार व्यक्ति से प्रारम्भ होता है एवं राष्ट्र पर जाकर समाप्त हो जाता है क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति से मिलकर समाज का निर्माण होता है। स्वस्थ समाज स्वस्थ राष्ट्र की नींव बनता है लेकिन इस स्वस्थता के पैमाने का प्रारंभिक बिन्दु है अहिंसा। अहिंसा का जागरण ही नई स्फूर्ति एवं नई ताजगी देकर नई बहार लाता है। केवल न मारना ही अहिंसा नहीं है। अहिंसा का झरना भीतर करुणा के स्त्रोत से बह-बहकर निकलता है। यदि मन में अहिंसा का दीप प्रज्जवलित है तो व्यावहारिक जगत् में वह अवश्य प्रकाशित होगा। यह प्रकाश निरंतर एक जैसा रहने वाला है इसमें न अंधकार का साम्राज्य होता है, न ही प्रकाश धीमा पड़ता है। अहिंसा का बीज यदि मन की धरती में बोया हुआ है तो वह फलवान वृक्ष बनकर अनेकों का दुःख-दर्द दूर कर अहिंसा की चेतना को जागृत करने में सक्षम बनता है। इस बात की साक्षी इतिहास के पन्ने दे रहे हैं।

महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति की दुबली-पतली काया में भी प्रारंभिक अहिंसा के बीज का वपन कर देश की आजादी को दिलाने में सहायक बना। आचार्य महाप्रज्ञ की भी यष्टि सम देह में अहिंसा की देवी विराजमान होकर अहिंसा के नाद ने अनेकों-अनेकों के प्राणों को सुरक्षित किया। अहिंसा की मशाल को हाथ में थामकर महामना महाप्रज्ञ ने मानव-मानव को मानवीयता का पाठ पढ़ाया।

बाइबिल में भी कहा गया है तुम किसी की हत्या मत करो। अहिंसा का सिद्धांत मात्र जैन धर्म का ही नहीं सभी धर्मों में किसी न किस रूप से स्वीकार किया गया है। हिंसा पशुता के बाड़े में खड़े अविवेकता के दर्शन कराती है जबकि 'अहिंसा मनुष्यता के महल में बेफिक्र रहने की बात बताती है।' जहां अहिंसा का वातावरण बनता है वहां मैत्री का उदय अपने आप हो जाता है। हिंसा का प्रारंभिक एवं अंतिम बिन्दु है भय। भय एक ऐसा संकट है जिसके आक्रमण से मनुष्य स्वयं अपनी दृष्टि में असमर्थ एवं प्रभावहीन हो जाता है। खलील जिब्रान ने भी कहा है तुम दरवाजों में से गुजर सको इसके लिए पंख समेटो मत, तुम कहीं छत से टकरा न जाओ इसके लिए अपने सिर को झुकाओ मत, दीवारें दरककर गिर न पड़ें इसके लिए तुम सांस लेने से डरो मत। जहां हिंसा वहीं पर भय, जहां अभय वहीं अहिंसा। अहिंसा का यह पहलू ही मानव-मानव की चेतना को झकझोर कर अभय बनने की शिक्षा प्रदान करता है।

दीपक को न जलाकर केवल दीपक-दीपक शब्द को रटने से तम नहीं हटाया जा सकता। केवल औषधि-औषधि की रटन से रोग देर नहीं होता। अंधकार को हटाने के लिए दीपक जलाना जरूरी है। रोग को मिटाने के लिए औषधि का सेवन जरूरी है, उसी प्रकार भय को मिटाने के लिए भी अहिंसा की आराधना करना भी जरूरी है। यदि भवसागर रूपी किनारे तलाश करने है, मुक्ति के मालिक से मिलना है तो अहिंसा के पद-चिह्नों पर कदम रखने ही होंगे। अहिंसा कन की भाषा को पढ़ने वाली, तन को तंदरूस्त करने वाली, धन को नैतिकता के दांव पर कसने वाली अमूल्य जड़ी-बूटी है। अहिंसा ही धर्म के शिखर पर आरूढ़ करवाकर सुख की मनोवृत्ति को अपने भीतर जगा सकती है। अहिंसा का द्वार क्षमा, संतोष, सरलता के मजबूत पत्थरों से बना हुआ है अतएव इसमें प्रवेश करने वाला शुभ मार्ग की ओर प्रस्थित हो जाता है।

युग पुरुष महावीर ने ''जीओ और जीने दो'' का सिद्धांत दिया जो आज जैन संस्कृति का प्राण बना हुआ है। तब तक इसकी सुरक्षा होती रहेगी, जैन संस्कृति स्वयं गौरवान्वित बनी रहेगी। बारह अणुव्रतों एवं पांच महाव्रत में प्रवेश करने का प्रथम दरवाजा अहिंसा ही है।

हिंसा सदैव दुःखकारक होती है उसकी चिल्लाहट युगों-युगों तक सुनाई देती है। बीसवीं शताब्दी के महायुद्धों की चर्चा आज भी हर जुबान पर आये बिना नहीं रहती। युद्ध शान्ति के लिए लड़े जाते हैं किन्तु हिंसा कभी शान्ति को जन्म नहीं दे सकती। ''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' की भावना ही मंगलकारी बनकर शान्ति को प्रदान करने वाली बन सकती है। पशु भी जन्म से हिंसक नहीं होते। शेर सर्वप्रथम माँ का दूध पीता है। नाग भी वात् को ग्रहण करता है। हिंसा का सिद्धांत अपने समुदाय के संग में रहने से पशु सीख पाता है, इसलिए अहिंसा की जागृति के लिए अहिंसा का संदेश चाहिए। युग पुरुष महावीर ने ''जीओ और जीने दो'' का सिद्धांत दिया जो आज जैन संस्कृति का प्राण बना हुआ है। तब तक इसकी सुरक्षा होती रहेगी, जैन संस्कृति स्वयं गौरवान्वित बनी रहेगी। बारह अणुव्रतों एवं पांच महाव्रत में प्रवेश करने का प्रथम दरवाजा अहिंसा ही है। अहिंसा की मणी को हाथ में थामकर सभी को प्रकाशित करने वाला ही महानता का स्पर्श कर पाता है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने भी इस मणी के द्वारा अहिंसा यात्रा के माध्यम से अनेकों का पथदर्शन कर सही रास्ता दिखाया। यदि भारत भूमि में ऐसे महापुरुष होते रहे तो भारत भूमि ध्वस्त होने से बच सकती है।

सुविधाभोगी लोग

सुषमा जैन

शान्ति, दया, प्रेम, सहानुभूति, उदारता, सुख और त्याग जीवन की परिपूर्णता के महत्वपूर्ण अंग माने जाते रहे हैं। इसलिए जीवन की परिपूर्णता में सहयोग देने वाली नीति वही हो सकती है जो असमानता, अन्याय और अनैतिकता के अंधकार से लड़ने को दृढ़ संकल्पित हो, जो विवाद, विभाजन, विरोध और विखंडन जैसे विजातीय तत्वों को उखाड़ फेंक समता, सौहार्द सद्भाव, संवेदना, सहिष्णुता और सहअस्तित्व का परचम लहरा सके, जो भारत की 28 राज्यों, 7 केन्द्र शासित प्रदेशों, 1818 बोलियों, 8 जातीय समूहों, 21 प्रमुख त्यौहारों तथा असंख्य मेलों वाली विविधता में एकता की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की सर्वव्याप्तता को बरकरार रख सके, और जो देश की आम जनता को दो वक्त की रोटी, दिन का चैन, और रात की नींद सुलभ करा सके।

परन्तु खेद का विषय है आज संप्रभु गणराज्य में 61 वर्ष बीत जाने के बाद भी आम आदमी को उसका सम्मान और अधिकार दिलाना तो दूर उसे कर्ज, बेरोजगारी और महंगाई का जहर पिलाकर जीवन से ही बेदखल किया जा रहा हो, जिस गणराज्य में 5 लाख कश्मीरी हिन्दू तो अपने ही देश में शरणार्थी बनकर दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हों और करोड़ों बांग्लादेशी घुसपैठिए नेताओं के सिरमौर बने हुए हों, जिस लोकतांत्रिक संवैधानिक व्यवस्था में बच्चों सहित 8 से 20 करोड़ लोग रात को भूखे रहकर खुले आसमान के नीचे मौसम के थपेड़े खाने को मजबूर हों, 40 प्रतिशत से अधिक लोग 15 से 20 रु. प्रतिदिन पर जिल्लत भरी जिंदगी जी रहे हों, जहां जातिवाद, भाषावाद, आतंकवाद, नक्सलवाद, अल्प संख्यकवाद, बहुसंख्यकवाद, परिवारवाद राष्ट्र की जड़ों में घुन की तरह चिपट कर देश की अखंडता और संप्रभुता को लगातार चुनौति दे रहे हों और जहां संकीर्ण क्षेत्रीयता में जकड़ी हिंसक और अराजक राजनीतिक शक्तियों के आगे घुटने टेककर उनका मौन समर्थन किया जा रहा हो, वहां हमारी राजनीति जीवन की सम्पूर्णता में सहयोग देने वाली नीति स्थापित करने में कितनी सफल सिद्ध हुई है यह आसानी से समझा जा सकता है।

राजनीति के साथ-साथ हमारी अर्थनीति और विदेशनीति में भी कई छिद्र उभरते जा रहे हैं यदि ऐसा नहीं है तो फिर क्यों देश की आधी से अधिक जनता को गरीबी की दल-दल में झोकनें जैसा स्तब्ध कर देने वाला गुनाह कर कुछ नवधनाढ्यों की प्रगति पर तालियां पीटी जा रही हैं? क्यों पाकिस्तान और चीन लगातार हमारी सीमाओं पर नजरें गड़ाने का दुस्साहस दिखा रहे हैं और क्यों विदेशों में हमारे नागरिक न केवल स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं बल्कि अपमान भरी जिंदगी जीने को विवश हैं।

ऐसा सिर्फ इसलिए है क्योंकि देश की बागडोर संभालने वाले नेताओं ने राष्ट्रहित के अनुरूप कार्य बंद कर दिया है उन्हें यदि कुछ दिखाई दे रहा है तो वह है कुर्सी और अपना वोट बैंक। सत्ताधीश निष्क्रिय हैं और विपक्ष मौन! इसलिए आज एक ऐसी नीति की आवश्यकता है जिसमें जन-जन की सुख-समृद्धि और विकास की ही योजनाएं बने, वही लोग राजनीति में चुने जायें जो जनता के दर्द को समझ उसकी समृद्धि के लिए कार्य कर सके। सत्ता पक्ष और विपक्ष अपना-अपना दायित्व मजबूती से संभाले। ऐसा न हो कि सत्ता पक्ष अपनी कुर्सी संभालने/बचाने में लगा रहे और विपक्ष टांग खींचने में।

वरिष्ठ साहित्यकार एवं पत्रकार
न्यू कृष्णनगर, जैन बाग, वीरनगर
सहारनपुर (उ.प्र.)

अहिंसा का प्रभाव

अहिंसा से प्रभावित होकर सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म अपना लिया। जब कभी बौद्ध भिक्षु सम्राट के यहां आते या सम्राट उनके यहां जाते तो सम्राट अपना सिर झुकाते हुए उन्हें नमस्कार करते। सम्राट के एक मंत्री यश को यह पसंद नहीं था कि सम्राट बिना किसी भिक्षु की योग्यता जाने उनके सामने सिर झुकाए या प्रणाम करें। यश ने कई बार बातों ही बातों में सम्राट का ध्यान इस ओर दिलाया, लेकिन सम्राट हर बार मौन रहे। एक दिन अचानक सम्राट अशोक ने एक अजीबोगरीब आदेश दिया कि उनके सभी मंत्री एक-एक प्राणी का सिर लेकर जाएं और सार्वजनिक स्थान पर उसे बेच कर आए। यश के लिए आदेश था कि वह मनुष्य का सिर लेकर आएगा। सम्राट के आदेश का पालन तो करना ही था। सभी मंत्री तो अपने-अपने सिर बेचकर राजा के पास सूचना देने पहुंच गये, लेकिन यश का सिर किसी ने नहीं लिया क्योंकि वह आदमी का सिर था। वह हताश-निराश राजा के पास पहुंचा। राजा ने कहा तुम्हारा सिर क्यों नहीं बिका, क्या वह किसी गंवार का सिर था, इसलिए नहीं बिका। यश ने कहा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सिर गंवार का है या किस सम्राट का। अब सम्राट अशोक ने कहा तुम ठीक कहते हो फिर तुम्हें इस बात पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि मेरा सिर भिक्षुओं के आध्यात्मिक ज्ञान और आत्म-त्याग के जीवन के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए क्यों झुकता है। किसी भी व्यक्ति की उसके पद के आधार पर नहीं बल्कि उसके गुणों और ज्ञान के आधार पर परख होनी चाहिए। किसी जर्जर कुरूप शरीर में भी शुद्धतम हृदय निवास कर सकता है। ■ **रजनीकांत शुक्ल**

एफ-380-एफ, सेक्टर-12, विजयनगर, गाजियाबाद-201009 (उ.प्र.)

अहिंसा सर्वोपरि धर्म है

नरेन्द्र देवांगन

भारतीय सभ्यता-संस्कृति में अहिंसा की परंपरा बहुत ही व्यापक और गहरी है। यहां के संतों, ऋषि-मुनियों, महर्षियों, मनीषियों, चिंतकों, दार्शनिकों आदि ने अहिंसा पर बहुत ही गहरा चिंतन किया है। यही कारण है कि यहां प्रत्येक जीव को अपने समान समझा गया और अहिंसा को धर्म के रूप में स्थान दिया गया। यहां तक कि समस्त संसार को एक परिवार के रूप में माना गया। भगवान बुद्ध का तो स्पष्ट उद्घोष ही था कि संपूर्ण पृथ्वी एक कुटुम्ब के समान है ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' भारतीय मनीषियों ने स्पष्ट कहा कि अहिंसा परम धर्म है। सचमुच अहिंसा सर्वोपरि धर्म है।

अहिंसा कायरता का सिद्धांत है और अपरिग्रह का सिद्धांत दरिद्रता का सिद्धांत है, इस गलत अवधारणा ने अहिंसा और अपरिग्रह की परिभाषा को विकृत बनाया है। शरीर, धन और पदार्थ को सुरक्षित रखने का मनोभाव कायरता पैदा करता है। इसीलिए वह हिंसा है। अहिंसा में उनका उत्सर्ग करने की भावना अंतर्निहित है, इसीलिए उसमें कायरता बोध होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अपरिग्रह का अर्थ अनावश्यक संग्रह का वर्जन होता है। इससे दरिद्रता का संवर्द्धन नहीं होता, बल्कि आर्थिक समायोजन का अवसर प्राप्त होता है। आज का मानव अहिंसा और अपरिग्रह के दर्शन को अव्यावहारिक कहकर उससे दूर रहना चाहता है, क्योंकि उसे उक्त दर्शन की सीमा का बोध नहीं है। महात्मा गांधी ने आजादी हासिल करने के लिए अहिंसा को अस्त्र के रूप में प्रयोग किया। अपने-अपने समय में अनेक महापुरुषों ने हिंसा को रोकने का आह्वान किया पर हजारों वर्षों से इस दुष्प्रवृत्ति पर अंकुश नहीं लग पाया है। बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को निगलने से लेकर एक मालिक के द्वारा मजदूर के शोषण तक हिंसा हमारे सामने है और हम कुछ भी कर पाने में असमर्थ हैं। हमारे खानपान से लेकर विचार प्रदूषण तक का इससे निकट का संबंध है। पाश्चात्य सभ्यता का असर भी इसका एक प्रमुख कारण है।

दुनिया में ऐसा कोई धर्म नहीं है जो हिंसामूलक हो। सभी धर्म की भित्ती अहिंसा पर ही टिकी हुई है। सभी धर्मों में अहिंसा पर व्यापक चिंतन हुआ है और इसे व्यक्तिगत ही नहीं बल्कि सामाजिक धरातल पर लाने की हमेशा कोशिश की गई। अहिंसा को ही हथियार माना गया है। हिंसा का विरोध हिंसा द्वारा करना हिंसा को ही बढ़ावा देना है। हिंसा का विरोध अहिंसा द्वारा ही संभव है।

महात्मा गांधी ने अहिंसा के बल पर ही भारत को स्वतंत्र कराया था। उन्होंने संसार के सामने प्रमाणित कर दिया कि अहिंसा में कितना बल होता है। वैसे भी मनुष्य स्वभाव से अहिंसक है। परिस्थिति उसे कभी-कभी अवश्य हिंसक बना देती है, लेकिन वह अपने पर नियंत्रण रखकर अहिंसक बना रह सकता है। महात्मा गांधी अपने पर नियंत्रण रखकर आजीवन अहिंसक बने रहे।

सारे संसार में अत्यंत संहारक अस्त्र-शस्त्र बन रहे हैं। अनेक देशों ने अपनी सीमाओं पर इन्हें तैनात कर रखा है। किसी युद्ध की घोषणा नहीं हुई है पर अत्यंत विनाशकारी आयुध सामग्री तैयार व तैनात है। यह किस तनाव के तहत हो रहा है? क्या मनुष्य इतना निर्बल व असहाय हो गया है कि वह बातचीत के द्वारा इस तनाव को कम करने की स्थिति में नहीं है? शायद नहीं है, क्योंकि स्थितियां कुछ ऐसी ही है और वर्षों से बनी हुई हैं। इसमें प्रति वर्ष बढ़ोतरी हो रही है। शस्त्रों की संख्या तथा उनकी मारक क्षमता में भी और तनाव में भी इजाफा हो रहा है। दूसरी तरफ मानव सभ्यता अपने विकास के संख्यातीत दावे करती है। ऐसे समस्त दावे खोखले हैं। सारी दुनिया में करोड़ों लोग हैं जो बहुत लाचार जीवन जी रहे हैं। वे सुविधाओं से वंचित हैं, क्योंकि गरीब देशों में रह रहे हैं। आबादी भी बढ़ रही है और मांग भी बढ़ती जा रही है। घट रही है मनुष्यता और आपसी प्रीत। आज इस पर ठीक से विचार नहीं हो रहा है। फुर्सत नहीं है किसी के पास। लेकिन जब स्थिति विस्फोटक हो जाएगी तो अवश्य ही सोचना पड़ेगा।

अहिंसा और सत्य दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं। अहिंसा के बिना सत्य नहीं हो सकता और सत्य के बिना अहिंसा नहीं हो सकती। सत्य की अनुपालना के लिए सिद्धांत है ''डरो मत। न बुढ़ापे से डरो, न रोग से डरो। न शोक-संताप से डरो और न मौत से डरो। डरा हुआ व्यक्ति भय से निस्तार नहीं पा सकता। भय अपने आप में हिंसा है। डराना हिंसा है तो डरना भी हिंसा है। इसलिए न डरो और न डराओ।

हिंसा हमारे बीच सर्वत्र अवस्थित है ही, हमारे भीतर तक इसका जाल गुंथा हुआ है। मनुष्य जिस तरह लोभ, मोह, क्रोध और परिग्रह के द्वारा हिंसा को स्वीकारे हुए है। भगवान महावीर ने परिग्रह को हिंसा माना है। यह मन की हिंसा है और मानसिक हिंसा ही युद्ध, आतंकवाद एवं सांप्रदायवाद का एक प्रमुख कारण है। मन के विचलन के बाद जीवन में विरोधाभास तो आते ही हैं, फिर इससे बचना मुश्किल होता है। सभ्यता के विकास के साथ हमने हिंसा के वीभत्स रूपों को आकार लेते देखा है।

यह भी सत्य है कि देश रक्षा एवं प्राण रक्षा के लिए हिंसा जरूरी हो जाती है, परंतु हमें सदैव यह कोशिश करनी चाहिए कि हिंसा की परिस्थिति ही पैदा न हो। मनुष्य स्वयं परिस्थिति का निर्माता और सृजक हैं। यदि वह संयम एवं धैर्य से काम ले तो हिंसा की स्थिति ही उत्पन्न नहीं हो सकती।

नरेन्द्र फोटो कॉपी,
पोस्ट : खरोरा, रायपुर (छत्तीसगढ़) 493225

कब होगा अंत हिंसा का

सुनील परीट

आधुनिकता की छाया में 'मानव' हिंसा के प्रति ही आकर्षित हो रहा है, न जाने वह जान-बूझकर या अंजान में ही हिंसा के प्रति आकर्षित हो रहा है। अपना एक मित्र मांसाहारी है और दूसरा शाकाहारी है तो उस शाकाहारी मित्र को तुच्छ भाव से देखते हैं। इससे हमारी प्रतिष्ठा कम होती जायेगी, ऐसा भाव मन में लाकर आज अनेक व्यक्ति हिंसा के भाजन हो रहे हैं। इसीलिए तो कहते हैं

''हिंसा-हिंसा ही है चारों ओर के संसार में।

मनुष्य-मनुष्य को ही मारे, तो जीवन ही असार है।।''

महावीर, महात्मा गांधी, आचार्य महाप्रज्ञ जैसे महापुरुषों ने अहिंसा को ही परम् धर्म माना, इसीलिए वे महान बन गये। उनके उच्च आदर्शों को भी हमने नहीं समझा, तो बुजुर्गों के प्रति क्या हम गौरव के पात्र ठहरेंगे? आज सारा संसार हिंसा की ताप में तप रहा है। मनुष्य ही नरसंहारों में जुट गया है, क्रूर प्राणी से भी आज मनुष्य की वर्तनी बनती जा रही है। सिर्फ फर्क इतना है कि, क्रूर प्राणी वन में रहते हैं, मनुष्य सुधारित समाज में रहता है। लेकिन हम यहां एक बात भूल रहे हैं कि सफल प्राणीमात्र में सिर्फ मनुष्य मात्र बुद्धिमान है। फिर भी एक बुद्धिमान मनुष्य इतना क्रूर क्यों बनता जा रहा है.....? इसलिए हिटलर कहते हैं ''एक चीता कभी दूसरे चीते को नहीं मारता। एक शेर कभी दूसरे शेर को नहीं मारता। परन्तु एक आदमी दूसरे आदमी को मारता है। इसलिए आदमी पशु से भी खतरनाक है।''

हिंसा की जर्जरता में हमने यह पवित्र भूमि को लाल रक्त से रंगीन बनाया है, चाहे वह नरसंहार हो या प्राणीमात्र की हिंसा। इस अंतिम दायरे में पहुंचकर हमें यह सोचना अत्यावश्यक है कि, मनुष्य मात्र क्यों अपने स्वार्थ के लिए इतना क्रूर बनता जा रहा है, यह कौन सी मानवता का धर्म है?

प्राणी दया, वृक्ष दया, मनुष्य दया हमारे मन में न हो तो उस भगवान की दहलीज पर कौन-सा मुंह लेकर जायेंगे....? हमने यहां पर 'वृक्ष दया' का उल्लेख किया है। वृक्षों को तोड़ना, मरोड़ना यह भी हिंसा का एक भाग ही है। क्योंकि वृक्षों में भी जीव है। अपना प्राण लगाकर हमें प्राणवायु अर्पण करते हैं। हमारी जीवन की आस के लिए एकजुट होकर खड़े हैं। लेकिन मनुष्य जरा भी आगे-पीछे न सोचकर उन वृक्षों का नाश करता रहता है। भविष्य में हम अगली पीढ़ियों के लिए क्या बचा कर रखेंगे?

इस हिंसा का मूल कारण नैतिकता की कमी ही समझना चाहिए। क्योंकि प्राचीन काल में नैतिकता का पाठ पढ़वाने के लिए गुरु दक्षिणा दी जाती थी। परंतु आज मुफ्त में नैतिकता का पाठ देने के लिए, उपदेश करने के लिए हर मोड पर अनेक साधु-संत, महापुरुष खड़े हैं, लेकिन हिंसा में लिप्त मनुष्य के पास 'समय' का अभाव है। क्या करें? आगे भविष्य में क्या हो, न जाने हिंसा में तप्त मनुष्य कब तक हिंसा के परिवेश में लिप्त होकर 'अहिंसा धर्म' की खोज में भटकता रहेगा? लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। हम सोचेंगे तब तक 'अहिंसा' का ही पतन न हो जाए।

उस समय हमारी रक्षा के लिए कौन आयेगा? भगवान श्रीकृष्ण या भगवान महावीर अवतार लेंगे? लेकिन शायद उस समय नरजीव का अंश भी इस भूमि पर न हो तो इससे हीन बात और कौन-सी हो सकती है....?

''छोड़ दो हिंसा का मार्ग,
पाओगे यहां सुंदर सा स्वर्ग।
हिंसा से न होवेगा कोई ज्येष्ठ,
अहिंसा ही है एक धर्म-श्रेष्ठ।।''

अध्यापक : सरकारी माध्यमिक पाठशाला
लककुंडी-591102, वाया-बैलहोंगल,
जिला बेलगाम (कर्नाटक)

अभूतपूर्व अहिंसा

राजा कुमारपाल बड़े ही धर्मनिष्ठ, सदाचारी एवं अहिंसा प्रेमी थे, ये न केवल अहिंसा पालन करने का दिखावा करते थे और न ही उपदेश देते, अपितु अपने जीवन में अहिंसा पालन की तरफ विशेष ध्यान देते रहते थे।

एक बार राजा कुमारपाल धर्म आराधना करने के लिए सामायिक में बैठे थे। राजा ध्यान मग्न होकर धार्मिक आराधना कर रहे थे कि उनके हाथ के कोमल भाग को एक जहरीले मकोड़े ने काट लिया। इस कारण आपको शारीरिक पीड़ा होने लगी। मकोड़े को अपने शरीर से हटाने के लिए राजा ने अहिंसामय तरीके से प्रयास किये। जैसे-जैसे वे प्रयास करते जाते थे। वहां मकौड़े को भय सता रहा था कि मुझे कोई मार रहा है। वह अपने सम्पूर्ण बल के साथ राजा के हाथ को काटने में लगा रहा।

राजा कुमारपाल को मकोड़े के काटने से निरंतर पीड़ा बढ़ती गयी। राजा ने सोचा कि मैंने फूंक मारकर, चवले से, कपड़े के सहारे मकोड़े को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो हटाने का प्रयास किया लेकिन सफलता नहीं मिली। राजा ने सोचा कि यदि मैं मकोड़े को हाथ से पकड़ कर हटाऊंगा तो यह मर जायेगा या फिर इसके कोमल पैर टूट जाएंगे। दिल में मकोड़े के प्रति दया और अहिंसा का भाव उत्पन्न होते ही राजा ने अपने शरीर के उस भाग को काटकर मकोड़े को अलग कर दिया।

राजा कुमारपाल की ऐसी अभूतपूर्व अहिंसा के कारण इन्होंने अपने शरीर को काटने के कष्ट की परवाह नहीं करते हुए मकोड़े को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया अहिंसा मय तरीके से हटा दिया।

■ **भूरचंद जैन, *जूनी चौकी का वास, बाड़मेर (राजस्थान)***

सभी जीवों का कल्याण

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक अनातोले फ्रांस का कथन है ''जब तक किसी व्यक्ति ने एक जानवर को प्यार नहीं किया हो तो उस व्यक्ति की आत्मा का एक हिस्सा जाग्रत होने से वंचित रह जाता है।''

इस बात की पूरी संभावना है कि बहुत से लोग अनातोले फ्रांस के उपरोक्त कथन से सहमत नहीं होंगे। किन्तु आप में से कभी भी किसी ने किसी पालतू कुत्ते, पड़ोसी की गाय, घर में घुस आने वाली काली बिल्ली अथवा घुड़सवारी के किसी क्लब में घोड़ों को प्यार से सहलाया होगा तो आप निश्चित रूप से अनातोले फ्रांस के कथन को सत्यापित करेंगे।

यहां एक सहज-सा प्रश्न यह उठता है कि हम जानवरों को क्यों प्यार करते हैं? लाल चोंच वाले हरे तोते (मिट्ठू), सफेद चूहे, खरगोश, कछुआ जैसे जानवरों को क्यों पालते हैं? क्या जानवरों और मानवों के बीच कोई भावनात्मक संबंध है? एक जानवर क्या मानव हृदय की सीमाओं का विस्तार कर सकता है? क्या जानवरों का मानव आत्मा से गहरा संबंध हो सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर है हां।

हिन्दुओं के एक मुख्य देवता हाथी के सिर वाले (गणेश) हैं और एक अन्य बंदर (हनुमान) हैं। शिव और विष्णु के बहुत से अवतार (देखें 'दशावतार') जानवरों के रूप में बताये गए हैं।

जानवर सदैव से हमारे जन-जीवन से जुड़े रहे हैं। जब हम उनके सम्पर्क में रहने लगते हैं तो हम उनकी भावनाओं को समझने लगते हैं और वे भी हमारी भाषा अथवा संकेत की भाषा समझने लगते हैं। तोता और मैना तो मनुष्यों द्वारा कही गई बातों को दोहरा सकने की क्षमता रखते हैं।

ऐसे देखा जाये तो पशु-पक्षी हमारे बड़े काम के प्राणी हैं। हमसे विपरीत उनके जीवन यापन की आवश्यकताएं बहुत कम होती हैं। पक्षी तो मुक्त आकाश में उड़ते हैं, जहां चाहते हैं बसेरा कर लेते हैं और जब चाहते हैं अनन्त आकाश की सैर करते हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त सभी जीव पर्यावरण से तालमेल बिठाकर रहते हैं और सर्दी-गर्मी को सहन करने की क्षमता रखते हैं। बस मनुष्य ही ऐसा जीव है जिसने अपनी सुख-सुविधा के साधन जुटाने में पर्यावरण को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। फिर भी मनुष्य ही ऐसा जीव है जो प्रकृति में अन्य जीवों की अपेक्षा सबसे कमजोर तो है, फिर भी सब से बुद्धिमान है।

मनुष्य अपने आप में अकेला ऐसा प्राणी है जो अपने मस्तिष्क की कल्पना-शीलता और संकल्पना अथवा धारणा संबंधी विचारों से शक्ति-सम्पन्न होता है। हमारे मस्तिष्क की बनावट कुछ ऐसी है जो हमें महसूस करने के योग्य बनाती ताकि हम पर्यावरण के साथ परस्पर प्रभाव डाल सकें, तालमेल बिठा सकें। तंत्रिका तंत्र में क्रमिक विकासीय सुधारों के फलस्वरूप अनुक्रिया की जटिलता और गति में वृद्धि हुई है, यद्यपि केवल पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया के कारण। किन्तु मनुष्यों में ललाट पिंडिका के विकास के कारण हम कल्पनाशीलता में बंध सके, व्यस्त हो सके।

वैसे देखा जाये तो मानव मस्तिष्क अत्यधिक क्षमतावान है। चाहे दर्शनशास्त्र हो, कविता हो या कि संस्कृति हो, सभी मानव मस्तिष्क की उपज हैं। मानव मस्तिष्क की यह अतिरिक्त क्षमता-सर्जन कल्पना शीलता के उपयोग की क्षमता ही षड्यंत्र अथवा जादू-टोना के अमूर्त भय का कारण हो गई। अज्ञात का भय, प्रारब्ध की संकल्पना, शंका, दुश्चिंता, काल्पनिक भय और चिंता का सम्पूर्ण बिंब भी इसी के दुष्परिणाम हैं। यहां एक सहज सा प्रश्न उठता है कि क्या हमारे मस्तिष्क के इस सबसे नए संस्करण का यही उद्देश्य था?

यह विश्वास करना कि इस युक्ति की संरचना (डिज़ाइन) जीवन को सुखमय बनाने के लिए किया जाना, थोड़ी दूरारूढ़ कल्पना थी। हम तकनीकी की प्रगति का श्रेय ले सकते हैं, खोजें कर सकते हैं और औज़ारों (टूल्स) का प्रयोग साधारणतया प्रभावशाली ढंग से कर सकते हैं। हम केवल यह समझ सकते हैं कि हमने औज़ारों का इस्तेमाल किया है। हम इस विशिष्ट औज़ार के जनक/जन्मदाता नहीं है। फिर इस जटिल, बहुउपयोगी मस्तिष्क का उद्देश्य क्या है, जिसने बाह्य विश्व के स्वरूप को परिवर्तित करने में सहायता की है? क्या इसका उद्देश्य बाह्य विश्व के स्वरूप को विकृत करना और हेर-फेर या जोड़-तोड़ करना था?

आंतरिक संसार को समझने के लिए कल्पनाशीलता हमें एक वरदान के रूप में दी गई थी। यह संभव नहीं है कि मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्रजातियां यह प्रश्न कर सकें ''हम कौन हैं?'' या ''इस सृष्टि की रचना क्यों की गई है?'' ये शंकायें हैं जो केवल विचार प्रक्रिया का एक बहिर्वेशन है और जो प्रतिदिन के सांसारिक जीवन जीने संबंधी कड़े परिश्रम से परे हैं।

इसलिए कल्पना और बोध की यह उन्नत क्षमता मानव मस्तिष्क को तह तक पहुंचने के लिए उपलब्ध कराई गई थी। एक ऐसी योग्यता जो और किसी जानवर के पास नहीं है। किन्तु यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सारे भय मस्तिष्क की इसी विकसित क्षमता के कारण हैं। इससे अधिक और नहीं। चाकू की तेज़ धार एक बहुत उपयोगी किस्म का उपकरण है, यदि इसका प्रयोग सही तरीके से किया जाये तो हमें इस विशिष्ट उपकरण (मस्तिष्क) के स्वामी होने का गौरव है, लेकिन पर्यावरण के संबंध में विवेक से काम लेना होगा। इस मस्तिष्क का उपयोग हमें विवेक के साथ अपने ज्ञान को बढ़ाने में करना चाहिए। अपने आप को समझने के लिए करना चाहिए।

ध्यान रहे, विकसित मानव मस्तिष्क प्रकृति का वरदान है। हमें इसका उपयोग समस्त जीवों के कल्याण के लिए करना होगा, ताकि पर्यावरण संतुलन बना रहे।

'अनुकम्पा', वाई 2 सी 115/6, त्रिवेणीपुरम, झांसी, इलाहाबाद 211019

उपभोक्तावादी संस्कृति

सविता लखोटिया

बढ़ते उपभोक्तावाद ने हर इंसान को ज्यों साधन-सुविधाओं का पुतला बना दिया जो पहले होड़ और बाद में वैमनस्य की डोरी पर नाचने लगा। साधन अब व्यक्ति की प्रतिष्ठा के मापक भी बनने लगे। कमाने के लिए व्यक्ति परिवार ही नहीं, जीवन के मूल्य और सिद्धांत भी छोड़ने को तैयार होने लगा।

परिवार शांति, सर्जना और विश्रांति का केन्द्र है। दिनभर अर्जन और सर्जन के लिए आदमी परिवार से स्फूर्त होकर चलना चाहता है और शाम को वह थका होने पर वहीं आकर दुबकना चाहता है अपनों के बीच अपने तन-मन की विश्रांति के लिए। यहाँ प्रेम और शांति के आगोश में वह अपने को ऊर्जस्वित करता है। यह सब संभव होता है एक परिवार में, जहाँ व्यक्ति को मिलता है प्रेम का लेप और सुरक्षा की मल्हम। परिवार में ही व्यक्ति इंसान बनता है। यहाँ बच्चे को मिलती है कोमल सार-संभाल और युवा को जीवन के लिए सही निर्देशन और नसीहत; बड़ों को श्रद्धा और मान तभी तो परिवार होता है आनन्द और आराम का धाम। आदि मानव तो जंगल में अकेला रहता था। अपनी सुरक्षा के लिए उसने समूह में रहना सीखा। समूह में तन को तो सुरक्षा मिल जाती थी पर मन को तृप्ति नहीं। इसलिए परिवार के रूप में उसने अपने लिए स्वर्गोपमधाम की रचना की।

आरंभ में परिपाटी बनी संयुक्त परिवारों की जिनमें दो, तीन, चार या इससे भी अधिक पीढ़ियां साथ-साथ रहा करती थीं। परिवार का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति परिवार का मुखिया बनता था। नेतृत्व के गुणों से भरपूर यही बुजुर्ग परिवार का संचालन करता था। बच्चे यहाँ स्वाभाविक रूप से समूह में रहने के गुण सीख लिया करते थे। धैर्य, सहिष्णुता, समन्वय और सेवा आदि गुणों का विकास व्यवहारगत हो जाता था। ऐसे चरित्र के धनी व्यक्ति समाज के अंग बनते थे तो समाज, नगर, देश और विश्व भी सुख और शांति के आगार बनते थे।

समय चक्र अपनी धुरी समेत घूमा। अबूझ परिवर्तन आया। संयुक्त परिवार बिखरने लगे और एकल परिवारों में बंटने लगे। अर्थप्रधान युग में संयुक्त परिवार के सदस्य कमाने के लिए यत्र-तत्र जाकर बसने लगे। धीरे-धीरे उनके साथ उनके पत्नी और बच्चे भी स्थानांतरित होने लगे। आवश्यकताओं ने हार्दिक निकटता की जगह विवश दूरियां पैदा कर दीं। दूसरी तरफ, आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के प्रभाव में स्वार्थपरक बीमारियां जातकों में समाने लगीं। छोटे-छोटे घेरों और घरों में भी संकीर्णता और स्वकेन्द्रिता ने उदारता और पारस्परिकता का स्थान ले लिया। परिणाम जो होना था सो हुआ। चरित्र में गिरावट आने लगी। नैतिकता अग्राह्य बन गयी।

परिवारों के बिखरने और टूटने का सिलसिला यहीं नहीं थमा। बढ़ते उपभोक्तावाद ने हर इंसान को ज्यों साधन-सुविधाओं का पुतला बना दिया जो पहले होड़ और बाद में वैमनस्य की डोरी पर नाचने लगा। साधन अब व्यक्ति की प्रतिष्ठा के मापक भी बनने लगे। कमाने के लिए व्यक्ति परिवार ही नहीं, जीवन के मूल्य और सिद्धांत भी छोड़ने को तैयार होने लगा। यही नहीं, अब स्त्री वर्ग भी इस आवश्यकता की पूर्ति में अर्जन के लिए घर से बाहर आने लगी। अर्जन की दक्षता के लिए लड़कियां भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उतरीं। उच्च और तकनीकी शिक्षा की खातिर युवा ग्राम से नगर और नगरों से महानगर और फिर विदेशों में जाकर अकेले-अकेले रहने लगे। वे स्वयं भी परिवार के स्नेह से वंचित हुए और अपनी स्वकेन्द्रिता के कारण औरों के प्रति भी कम संवेदनशील रहने लगे। चरित्र और आचरण का संयम तो पहले ही दुर्बल हो चुका था। इन सबने मिलकर बहुत से सामाजिक प्रभावों को जन्म दिया जो सुखी परिवार की परिभाषा को आड़े हाथों लेने लगे। इनमें से उदाहरण के तौर पर कुछ बिन्दु निम्नांकित हैं

■ अकेले रहने की प्रवृत्ति ने व्यक्ति को अपने आप में द्वीप बना दिया। वह सबसे कटा संकीर्ण घेरे में स्वार्थ के लिए जीने लगा। पुत्र या पुत्री बड़े परिवार को तो छोड़, माता और पिता तक की जिम्मेदारी को बोझ मानने लगे। बड़े-बूढ़ों के लिए घर, घर नहीं रहा और अब वृद्धावस्था पश्चिम के देशों की तरह एक रोग बनने लगी है।

■ जिन चारित्रिक गुणों का विकास सहज ही हो जाता था, केवल वे ही नदारद नहीं हुए अपितु असहिष्णुता, अधैर्य और समन्वयहीनता ने छोटे-बड़े सभी को अनेक मनोविकारों से घेर लिया। आज स्थिति यह है कि मनोचिकित्सकों की जरूरत अधिक महसूस की जाने लगी है।

■ चूंकि स्त्रियां आधे वक्त काम पर बाहर रहने लगी हैं, चाहे अर्जन के लिए अथवा पुरुष के काम में सहयोग के लिए, उनकी व्यस्तता बढ़ गई। अतः घर वह आराम और आत्मीय स्थली नहीं रहा जो पहले हुआ करता था।

■ बच्चे भी माता-पिता का साथ

कम पाने लगे हैं। माता-पिता बच्चों को साधन तो अधिक दे पाते हैं पर अपने साथ की भावुक गर्माहट कम ही दे पाते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे परिवारों में बच्चों को हम-उम्रों का खेल भरा साथ भी नहीं मिल पाता। आचरण के अनुकरण से सीखे जाने वाले गुणों की कमी नई पीढ़ी में सहज ही देखी जा सकती है।

■ पारंपरिक पर्वों, उत्सवों और धार्मिक कृत्यों में सम्मिलित होने के अवसर कम हो गए हैं। जिन संस्कारों का स्फुरण इनके माध्यम से होता था, अब उनकी ओर रुचि भी घटती जा रही है।

■ कोढ़ में खाज पैदा कर रहा है धर्मान्धता युक्त दिखावे वाला आचरण और रुक्ष उपदेशों के माध्यम से थोपी गई संस्कार लकीरें। इनके चलते एक तरफ नई पीढ़ी में धर्म और संस्कार के प्रति विद्रोह और नकारात्मक भाव पैदा हो रहे हैं और दूसरी तरफ पीढ़ियों के बीच का अंतराल बढ़ता जा रहा है।

अब कैसे बचाएं आदर्श परिवार की संस्था और संस्कार को जिसकी रचना मानवीयता की समृद्धि के लिए ही हुई थी? इसके लिए कुछ सुझाव

■ शिक्षा-सम्प्रदान में मनोवैज्ञानिक प्रणालियों और गतिविधियों से बच्चों के दिल और दिमाग में ज्ञान की पैठ के साथ-साथ सहजीवन की ललक जगाई जा सकती है। पर्यावरण सम्बन्धी और प्रयोग-आधारित शिक्षा इस दिशा में बहुत सहायक हो सकती है। ध्यान यह रहे कि कम से कम शिशु कक्षाओं के अध्यापक-अध्यापिकाएं वे ही बनें जिनके आचरण सर्वभावेन अनुकरणीय हों। आजकल 'प्ले-स्कूलों' का प्रचलन हुआ है और इनका इस ओर अच्छा योगदान हो सकता है यदि हमारे अभिप्राय व्यवसायिक कम हों और उद्देश्यपूरक अधिक हों।

■ फ्लैट संस्कृति वाले सहकारी आवास गृहों में अपने प्रांगण में सांस्कृतिक, अकादमिक व खेलकूद संबंधी गतिविधियां आयोजित करना संयुक्त परिवार की कई विशेषताओं को ग्राह्य करने में नई पीढ़ी की मददगार हो सकती है। ये कार्य अनेक स्थानों पर आरंभ भी होने लगे हैं और यह भी अनुभवगत हुआ है कि किसी एक परिवार का विशिष्ट व्यक्ति सबके लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। यह और भी व्यापक स्तर पर करना शुभ होगा।

■ धर्म-पंथ की थोप और दिखावे कम कर, समाज के बुजुर्ग से लेकर पंडित, पुजारी और साधु-संत आदि सभी यदि व्यक्ति के आध्यात्मिक उन्नयन की ओर ध्यान दें तो बात बन जाए। मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर आदि उपासना आवासों से ऐसे ही फतवे जारी हों जो नई पीढ़ी की वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा स्वीकार्य हों और जो उनमें इंसानियत की प्रेरणा पैदा करें, न कि उन्हें भ्रमित करें या विद्रोही बनाएं।

■ उपवास, व्रत व अन्यान्य धार्मिक कृत्यों के महत्त्व में रूढ़ि नहीं अपितु आध्यात्मिक गुणों और जीवन मूल्यों को उभारने का प्रयास किया जाना चाहिए।

■ संचार माध्यमों से उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार पर रोक लगाई जाए। सुविधाचार फैलाने के बजाय संतोषी जीवन के यापन की चेतना जगायी जानी चाहिए।

इस तरह से तैयार व्यक्तियों का परिवार सुखी परिवार बनकर एक स्वस्थ समाज और शांति और सद्भाव से परिपूर्ण विश्व की रचना कर सकता है।

विद्या विहार, ख-61-अ, भवानी नगर
जयपुर-302013 (राज.)

अणुव्रत अधिवेशन

9, 10, 11 अक्टूबर 2010 को सरदारशहर में

अणुव्रत महासमिति का वार्षिक अधिवेशन आचार्य श्री महाश्रमण के सान्निध्य में **बानीदा-बास, ओसवाल पंचायत भवन, रामदेव मंदिर के सामने, सरदारशहर, चुरू-राजस्थान** में 9, 10, 11 अक्टूबर 2010 को आयोजित हो रहा है। सर्व स्थानीय/ जिला/प्रादेशिक अणुव्रत समितियों, कार्यसमिति सदस्यों, साधारण सदस्यों एवं कार्यकर्ताओं से अनुरोध है कि अधिवेशन में अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करावें। विश्वास है कि आप हमारे अनुरोध को स्वीकार कर अपने प्रतिनिधियों के आगमन की अग्रिम सूचना अणुव्रत महासमिति नई दिल्ली को शीघ्र भिजवाएं, ताकि आवास एवं अन्य व्यवस्थाएं सुनिश्चित की जा सकें।

विजयराज सुराणा, महामंत्री

नाम बड़े, दर्शन छोटे

जसविंदर शर्मा

अरस्तू से लेकर अर्मत्य सेन तक यही प्रचार किया गया है कि जीनियस लोग पैदायशी रूप से महान होते हैं। एक विद्वान के पैदा होने से पहले अनिवार्य रूप से बड़ी संख्या में औसत लोगों का आगमन होता है। विद्वान तो लाखों में एक होता है। विद्वान के पास उन्नत ललाट होता है जिस पर बल पड़ते हैं। उसके पास विलक्षण दिमाग, चमकदार आंखें, उभरी हुई नाक, चौड़ा-चकला चेहरा, काली-घनी भौंहें और शानदार ठुड्डी होती है जो लम्बी दाढ़ी से ढकी रहे तो और भी तिलिस्म पैदा करती है। उनमें एक भी ऐसा लक्षण नहीं होता कि जिससे सिद्ध हो सके कि वे साधारण मनुष्य होते हैं या हो सकते हैं।

लोग यह सोचते हैं कि विद्वान लोगों को खुदा बड़ी फुरसत से बनाकर धरती पर भेजता है। ये लोग तभी तो इतने अलग और कटे-फटे से रहते हैं। यह सच भी है कि विद्वान लोग अपने सिवा किसी के बारे में नहीं सोचते। बाकी की दुनिया उनके लिए तुच्छ होती है। उसकी पत्नी या बेटा चाहे यह दुनिया छोड़कर चले जाएं, विद्वान को कोई फर्क नहीं पड़ता। वह बिल्कुल प्रसन्न रहते हैं। हमें विद्वान चाहिए मगर हम नहीं चाहते कि उनकी संख्या बहुत ज्यादा हो। हमें लोगों की जरूरत है, जीनियस लोगों की इतनी नहीं। विद्वान इस पृथ्वी का चेहरा बदल सकते हैं मगर छोटी से छोटी बात में वे अपनी मूर्खता प्रदर्शित कर देते हैं।

कवि ठीक कहता है, 'पंडित और मशालची दोनों बूझे नाहीं, औरों को कर रोशनी आप अंधेरे माहीं।' मशाल उठाने वाले के लिए मुख्य काम है खुद अंधेरे में रह कर दूसरों को रोशनी दिखाना। जीनियस के साथ भी यही दिक्कत होती है कि उनकी सलाह दूसरे के लिए है, खुद वे अपनी सीख पर कम ही अमल करते हैं। इतिहास गवाह है कि इस धरती पर बुराई हमेशा किसी न किसी जीनियस आदमी के माध्यम से ही अवतरित हुई है। रावण के बारे में कहा जाता है कि बहुत बड़ा विद्वान था मगर उसके कर्मों पर नजर डालें तो लगता है कि अपने ज्ञान से उसने जरा भी लाभ नहीं उठाया।

एक नए स्थान पर ग्रामीणों के सामने एक तेज-तर्रार धर्म-उपदेशक ने अपनी सारी विद्ववता दिखाने में पूरा जोर लगा दिया। आंखें तरेरकर, भवें सिकोड़ कर, अपनी भारी गंभीर आवाज में उसने लोगों को अनेक पापों के बारे में बताया, उन्हे अपराधबोध से परिचित करवाया। अगली सुबह फिर ऐसे तर्क दिए कि किस तरह आज का हर आदमी बहुत गिर चुका है। दोपहर के भोजन के दौरान ग्रामीण लोगों से बात करते हुए उपदेशक ने पूछा, 'क्यूं भाई, मेरे उपदेश तुम्हे कैसे लग रहे हैं?'

गांववाले मासूमियत से बोले, 'वाह महात्मा जी! आपके उपदेश तो बहुत सुन्दर हैं और शिक्षा देने वाले भी। हम लोग तो यहां आराम से सादा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपके आने से पहले तो हमें पता ही नहीं था कि पाप क्या होता है?'

विद्वान लोग बहुत विचित्र होते हें। एक जीनियस के साथ रहना आम तौर पर रहना कठिन होता है क्योंकि वह तुनक-मिजाज, दुखी कर देने वाला और असहनीय होता है। महान विभूतियों का प्राय पागलपन से गहरा रिश्ता रहा है। फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे कालखंड जो एक भी जीनियस पैदा नहीं करते, उन्हे बड़ी हिकारत के साथ देखा जाता है।

कबीर कहते हैं, 'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।' विद्वान होना बड़ी बात नहीं है। कुछ पोथियां रट लो, दस बारह चेले-चपाटे साथ ले लो और समझ लो कि जीनियस हो गए। एक बार विद्वान हो गए तो समझ लो कि हमेशा के लिए विद्वान हो गए। जैसा नेता लोगों के साथ होता है कि एक बार खुद नेता बन गए तो कई सदियों तक आने वाली पीढ़ियों तक उनके कुनबे की नेतागिरी चलती रहती है। लोग हर बार आप ही को आगे कर देंगे। वैसा ही कुछ जीनियस लोगों के साथ होता है। जहां कहीं सोचने विचारने की बात आई तो विद्वान लोगों को बुला लिया जाता है।

हम भारतीयों के साथ यह बहुत बड़ी त्रासदी है कि हमारे पास इतने बड़े-बड़े विद्वान होने के बावजूद हम किसी भी क्षेत्र में अपनी समस्याएं सुलझा नहीं पा रहे हैं। हमारे विद्वान और बुद्धिजीवी अपने लेखों और पुस्तकों में लिखते रहते हैं कि सही आर्थिक व कृषि नीति यह होनी चाहिए, पर्यावरण की रक्षा के लिए ये कदम उठाए जाएं या हमारे कारखानों व उद्योग-धंधों की यह दिशा होनी चाहिए। समाज और सरकार पर उनकी बातों का कोई असर नहीं पड़ता। जीनियस अपना राग अलापते रहते हैं। समाज और सरकार अपनी दिशा में चलते रहते हैं। लोग विद्वानों के शोधपूर्ण और गंभीर विचारों से प्रभावित होना नहीं चाहते।

असली विद्वान या बुद्धिजीवी तो वही है जो अपने शोध ही न बताए बल्कि इस दिशा में सक्रियता भी दिखाए। आज विद्वान व बुद्धिजीवी सरकार से रत्न, जवाहर व बड़ा पद पाने के लालच में सत्तासीन लोगों के सामने नतमस्तक खड़ा रहता है। वह ऐसे ठोस उपायों के बारे में सोचना नहीं चाहता कि जिससे सरकार को विवश कर सके कि वह विद्वानों की बातों पर विचार करे। तभी तो कहा गया है कि विद्वाान अपनी सारी ऊर्जा किसी चिंतन में लगा देता है मगर उसके बाद समाज को उसके शोध का क्या लाभ मिला इस बारे में आगे काम करना वह जरूरी नहीं समझता। सरकारी फायदा उठाकर वह संतुष्ट आदमी की तरह अच्छी सुविधाओं के बीच बाकी जीवन काट देता है। विद्वता अगर अपनी दुनिया में ही सिमटी रहे और समाज के काम न आए तो वह भी धीरे -धीरे वायवीय होने लगती है। ज्ञान से वंचित होकर कर्म हानिकारक होता है उसी तरह कर्म से दूर होने पर विद्वता में भी विकृति आ जाती है।

5/2 डी, रेलविहार, मंसादेवी, पंचकुला-134109 (हरियाणा)

आचार्य महाश्रमण के सान्निध्य में सरदारशहर में विविध कार्यक्रम

सरदारशहर, २४ अगस्त। रक्षाबंधन पर्व के महत्त्व और इसके इतिहास की चर्चा करते हुए साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने कहा रक्षाबंधन भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पर्व है। इसे किसी भी धार्मिक और ऐतिहासिक प्रसंग के साथ जोड़ा जाए, मूल बात यह है कि यह पर्व स्नेह और संकल्प के महत्त्व को दर्शाता है और उसकी स्मृति कराता है। हर व्यक्ति को अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। जो अपनी आत्मा की सुरक्षा करता है, वह सब दुःखों से मुक्त हो जाता है। जिसकी इन्द्रियां सुसमाहित हैं, वह आत्मा की रक्षा कर सकता है। जिसकी इन्द्रियां असमाहित हैं, उसकी आत्मा सदा अरक्षित होती है। इस अवसर मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

२५ अगस्त। आचार्य महाश्रमण ने जनमेदिनी को संबोधित करते हुए कहा 'शिक्षा हमारे जीवन का एक उपयोगी पहलू है। शिक्षा के लिए उचित संसाधनों की अपेक्षा होती है। इसके लिए समाज के लोग जरूरतमंदों का सहयोग करते हैं। आज शिक्षा बहुत खर्चीली होती जा रही है, यह विचारणीय बात है। जहां तक शिक्षा के स्तर की बात है, यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि शिक्षा में केवल सूचनात्मक ज्ञान ही न हो, उसके साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा का समावेश हो तो शिक्षा जगत में परिपूर्णता आ सकती है।

कार्यक्रम में सूरजमल नाहटा चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा मेधावी छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्ति प्रदान की गई। प्रसन्न नाहटा ने प्रस्तुत संदर्भ में अपने विचार रखे। विमल नाहटा ने छात्रवृत्ति के चैक प्रदान किए। सरदारशहर नागरिक परिषद अहमदाबाद की ओर से छात्रों को कापियां बांटी गयी।

२६ अगस्त। रात्रि में **'महात्मा महाप्रज्ञ'** पुस्तक पर क्विज प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। स्थानीय सभा द्वारा रतनलाल आनंदकुमार दफ्तरी के सौजन्य से इस प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसमें ८३ प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

२८ अगस्त। लाडनूं नगरपालिका के नवनिर्वाचित अध्यक्ष बच्छराज नाहटा ने आचार्य महाश्रमण के दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त किया। बच्छराज नाहटा श्रद्धालु और जिम्मेदार हैं। उनमें सेवा की प्रबल भावना रहती है। पंजाब प्रान्तीय सभा के मंत्री कमल नौलखा ने पंजाब यात्रा का अनुरोध किया। आयकर आयुक्त जे.एन. वासुदेव एवं आयकर अधिकारी मनमोहन शर्मा ने आचार्य महाश्रमण के दर्शन किए।

२९ अगस्त। नव भारत टाइम्स मुम्बई के संपादक अवधेश व्यास ने 'अहिंसा आर्ट गैलरी' के संदर्भ में अपने विचार रखे। मदनजी फूलफगर ने सुमधुर गीत प्रस्तुत किया। राजमल श्रीमाल ने अहिंसा आर्ट गैलरी की योजना प्रस्तुत की। खेडब्रह्मा के शंकरलाल जैन ने गुजराती भाषा में प्रकाशित 'ज्योतिपुंज महाप्रज्ञ' कृति आचार्य महाश्रमण को उपहृत की।

अहिंसा आर्ट गैलरी के संदर्भ में आचार्य महाश्रमण ने कहा 'जहां चेतना अनुकंपा से भावित हो जाती है, वहां अहिंसा अपने आप अवतरित होती है। अहिंसा आर्ट गैलरी में कान्तिभाई का श्रम बोल रहा है। यह नाम के अनुरूप अपनी पहचान बनाए।'

त्रिदिवसीय अधिवेशन

३० अगस्त। आचार्य महाश्रमण के सान्निध्य में तेरापंथ विकास परिषद एवं अमृत संसद का १६वां वार्षिक अधिवेशन संपन्न हुआ। शान्ति सकलेचा ने गीत का संगान किया। संयोजक लालचन्द सिंघी ने अधिवेशन में चर्चित एवं निर्णीत विषयों की अवगति दी। पन्नालाल पुगलिया ने अपने विचार रखे। राजकरण सिरोहिया ने विकास परिषद के संयोजक, महामंत्री आदि का सम्मान किया। मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा ने अपने वक्तव्य में लक्ष्य के प्रति जागरूक रहने की प्रेरणा दी।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने कहा 'अधिवेशन का पहला रूप एक आइना है, जिसमें अतीत का सिंहावलोकन और कार्यशैली का मूल्यांकन होता है। अधिवेशन का दूसरा रूप कैनवास है, जिसमें भावी योजनाओं के चित्र उकेरे जाते हैं। अधिवेशन का तीसरा रूप एक उत्सवतुल्य होता है, जिसमें योजनाओं में नए-नए रंग भरकर अपने कर्तृत्व को उजागर करना होता है।

आचार्य महाश्रमण ने कहा हर व्यक्ति को परीक्षा करके बोलना चाहिए। परीक्षित वचन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। अर्थपूर्ण बात कलह को शान्त करने वाली होती है। निरर्थक हजारों बात कहने की अपेक्षा एक अर्थपूर्ण बात पर ध्यान देना अधिक सार्थक होता है। विकास परिषद गुरुदेव तुलसी के समय से काम कर रही है। इसके माध्यम से समाज हित के विषयों पर चिंतन होता है। वर्तमान में इसके संयोजक लालचन्द सिंघी पूर्ण निष्ठा, समर्पण और श्रद्धा के साथ कार्य किया है।

कर्नाटक विधानसभा में आचार्य महाप्रज्ञ को श्रद्धांजलि

कर्नाटक। कर्नाटक विधानसभा ने आचार्य महाप्रज्ञ के मानवीय मूल्यों के उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान का उल्लेख करते हुए श्रद्धांजलि समर्पित की है। कर्नाटक विधान सभा द्वारा पारित श्रद्धांजलि प्रस्ताव की प्रति बेंगलोर सभा के अध्यक्ष कन्हैयालाल चीपड़, उपाध्यक्ष हीरालाल मांडोत एवं मंत्री माणकचन्द संचेती ने १६ अगस्त २०१० को आचार्य महाप्रज्ञ को समर्पित की।

१८ जून २०१० को कर्नाटक विधानसभा के अध्यक्ष के.सी. भोपैया की उपस्थिति में पारित सर्वसम्मत प्रस्ताव की भाषा इस प्रकार है

'आचार्य महाप्रज्ञ भगवान महावीर के सिद्धान्तों के प्रसार में सदा अग्रणी रहे। उन्होंने 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' इस सूक्त का व्यापक प्रचार करते हुए जनता में जागरूकता पैदा की। उन्होंने अहिंसा के संदेश को जन-जीवन का अंग बनाने के लिए एक लाख किलोमीटर की पदयात्रा की। उन्होंने संपूर्ण राष्ट्र में कन्या भ्रूणहत्या के उन्मूलन के लिए जनजागरण अभियान चलाया। ऐसे महान संत ९ मई २०१० को दिवंगत हो गए। सभी सम्माननीय सदस्यों ने दिवंगत आचार्यश्री महाप्रज्ञ के सम्मान में खड़े होकर एक मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि समर्पित की।

'यात्रा एक अकिंचन की' का तीसरा संस्करण प्रकाशित

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ की आत्मकथा 'यात्रा एक अकिंचन की' का पांच हजार प्रतियों का प्रथम संस्करण केवल एक मास में समाप्त हो गया। पाठक वर्ग में यह बहुत लोकप्रिय हो रहा है। इसका तीन हजार प्रतियों का दूसरा संस्करण भी समाप्त हो गया है। जैविभा द्वारा केवल दो मास में तीन संस्करणों का प्रकाशन इस कृति की लोकप्रियता का स्वयंभू साक्ष्य है। उल्लेखनीय है आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी आत्मकथा में अपनी साधना के अनेक अज्ञात रहस्यों का अनावरण किया है।

इतिहास मंथन प्रतियोगिता एवं पर्युषण पर्व

सरदारशहर, 31 अगस्त। जैनविश्वभारती द्वारा आयोजित इतिहास मंथन प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले प्रतियोगियों को पुरस्कृत किया गया। प्रतियोगिता में लगभग एक हजार प्रतियोगियों ने भाग लिया। जैविभा के डायरेक्टर राजेन्द्र खटेड़ ने प्रतियोगिता के संदर्भ में विशद अवगति दी। जैविभा के सहमंत्री भूरामलजी श्यामसुखा ने अपने विचार व्यक्त किए। प्रायोजक सुशीला श्यामसुखा ने प्रथम तीन वरीयता स्थान प्राप्त करने वाले रिकेश बैद, रश्मि संचेती एवं प्रिया गधैया (सरदारशहर) को मोमेंटो एवं पुरस्कार राशि का चैक प्रदान किया। प्रवास व्यवस्था समिति की ओर से सुमति गोठी ने स्मृति चिह्न भेंट किया। जैनविश्वभारती के ट्रस्टी विमल नाहटा ने प्रतियोगिता के प्रायोजक भूरामल श्यामसुखा, मांगीलाल भंडारी, फतेहचन्द सिंघी एवं विमलसिंह घोड़ावत का मोमेंटो भेंट कर सम्मान किया।

२ सितम्बर। परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण ने अपने मंगल प्रवचन में कहा 'जैसे युद्ध के क्षेत्र में विजय प्राप्त करने के लिए रणनीति महत्त्वपूर्ण होती है, वैसे ही स्वयं को जीतने के लिए साधना महत्त्वपूर्ण होती है। जब व्यक्ति में संकल्प शक्ति का जागरण होता है, तब विजय की आकांक्षा अधूरी नहीं रहती।

कार्यक्रम में **महात्मा महाप्रज्ञ** पुस्तक पर आधारित क्विज प्रतियोगिता में वरीयता स्थान प्राप्त करने वाले प्रतियोगियों को पुरस्कृत किया गया। प्रायोजक रतनलाल दफ्तरी, अशोक नाहटा, पीरदान बरमेचा एवं करणीदान चिंडालिया ने पुरस्कार वितरित किए। निशा सेठिया ने प्रतियोगिता की विस्तार से जानकारी दी।

३ सितम्बर। आचार्य महाश्रमण ने प्रातःकालीन प्रवचन में कहा 'आत्मानुशासन का विकास बहुत जरूरी है। जो स्वयं पर अनुशासन नहीं करता, उसे दूसरों के अनुशासन में रहना पड़ता है। व्यक्ति के लिए यह श्रेयस्कर है कि वह स्वयं अपनी आत्मा का दमन करे अप्पा चेव दमेयव्वो। हम त्याग, संयम और तपस्या के द्वारा आत्मा का दमन करना सीखें।

४ सितम्बर। भाद्रव शुक्ला ११ को आचार्य महाप्रज्ञ की चतुर्थ पुण्यतिथि पर साध्वी मुकुलयशा तथा साध्वी मनीषा ने श्रद्धा गीत का संगान किया। मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा ने कहा आचार्य महाप्रज्ञ के सामने अनेक अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियां आईं, किन्तु वे कभी उनसे प्रभावित नहीं हुए। उनका आभामंडल उपशम के परमाणुओं से अभिमंडित था।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने कहा 'जो खाद्य संयम और वाणी-संयम करना जानता है, वह मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है। आचार्य महाप्रज्ञ का संयम अनुत्तर था। उन्होंने समता की साधना की और सदा प्रसन्नता का जीवन जीया।'

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण ने कहा 'मुझे दो गुरुओं के पावन सान्निध्य में रहने का दुर्लभ अवसर मिला। मैंने अपने जीवन के सत्ताईस वर्ष आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में बिताए। आचार्यश्री ने मुझे काम करने का उन्मुक्त आकाश दिया। मैं सक्रिय रूप से उनके साथ रहा। उन्होंने अनेक संघीय कार्य मेरे द्वारा संपादित करवाए। आचार्य महाप्रज्ञ ज्ञानी और करुणाशील आचार्य थे। वे विनम्र और मृदुभाषी स्वभाव के थे और प्रायः प्रसन्न रहते थे। जहां प्रसन्नता होती है, वहां शान्ति रहती है। शान्ति और प्रसन्नता एक-दूसरे के पर्याय हैं। हर स्थिति में शान्त रहने वाला व्यक्ति ही सुखी रह सकता है।

पर्युषण पर्व

५ सितम्बर। भाद्रव शुक्ला द्वादशी। अध्यात्म के शिखर पर्व पर्युषण महापर्व का शुभारंभ। प्रथम दिवस का खाद्य संयम दिवस के रूप में आयोजन। कार्यक्रम का शुभारंभ मुमुक्षु बहनों द्वारा तीर्थंकर स्तुति गीत से हुआ। मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा ने खाद्य संयम के महत्त्व को विश्लेषित किया।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने कहा 'जिस प्रकार सब मंत्रों में नमस्कार महामंत्र, सब रत्नों में चिंतामणि रत्न और सब ज्ञानों में केवलज्ञान प्रमुख है, उसी प्रकार सब पर्वों में पर्युषण पर्व प्रमुख है। यह मनुष्य के जीवन को संवारने और निखारने का पर्व है। यह ग्रंथि-मोचन का पर्व है। कषाय को कम करने की साधना का पर्व है। इस पर्व की आराधना से जीवन में निर्मलता आती है।'

आचार्य महाश्रमण ने कहा 'पर्युषण पर्व सभी के लिए आराध्य है। एक गृहस्थ के लिए वर्षभर धर्माराधना करना कुछ कठिन हो सकता है, किन्तु इन आठ दिनों में वह सघन धर्माराधना करे। इन दिनों में संकल्प के साथ विधिपूर्वक एक श्रुत सामायिक का अभ्यास चले। पर्युषण पर्व विशेष रूप से साधु साध्वियों के लिए है। किन्तु श्रावक समाज भी इसकी जागरूकतापूर्वक आराधना करे।'

६ सितम्बर। पर्युषण महापर्व के दूसरे दिन का स्वाध्याय दिवस के रूप में आयोजन। आचार्य महाश्रमण ने कहा 'स्वाध्याय के लिए अनेक ग्रंथ हैं। हम उस ग्रंथ का स्वाध्याय करें, जिससे राग से विराग की ओर प्रस्थान हो सके। राग सब दुःखों का मूल है। जिससे विराग की चेतना जागे, वही ज्ञान श्रेयस्कर है।'

हिन्दी भवन में आचार्य महाप्रज्ञ के तैलचित्र का अनावरण

नई दिल्ली। अणुव्रत भवन के समीप हिन्दी भवन में अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ के तैलचित्र का अनावरण किया गया। हिन्दी भवन की दीवारों पर हिन्दी के उन साहित्यकारों के चित्र सुसज्जित हैं, जिन्होंने अपने जीवन में हिन्दी भाषा को अपने साहित्य से समृद्ध किया है। आचार्य महाप्रज्ञ के तैलचित्र की प्रतिष्ठापना का अभिक्रम उनकी साहित्यिक सेवाओं की श्रद्धापूर्ण स्मृति है। हिन्दी भवन, तेयुप एवं महिला मंडल के संयुक्त तत्त्वावधान में मुनि महेन्द्रकुमार के सान्निध्य में आयोजित एक विशेष समारोह में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल बी.एल. जोशी ने आचार्य महाप्रज्ञ के तैलचित्र का अनावरण किया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता कर्नाटक के पूर्व राज्यपाल टी.एन. चतुर्वेदी ने की। इस अवसर पर प्रदत्त आचार्य महाश्रमण के विशेष सन्देश का वाचन मुनि अभिजितकुमार ने किया। डॉ. योगेन्द्र शर्मा 'अमन' ने श्रद्धा गीत का संगान किया। संगायक जितेन्द्रसिंह ने आचार्य महाप्रज्ञ के गीतों की संगीतमय प्रस्तुति दी।

वरिष्ठ पत्रकार वेदप्रताप वैदिक ने कहा आचार्य महाप्रज्ञ अद्भुत साधु और महान पंडित थे। पिछले सौ-सवा सौ वर्ष में इतने जनोपयोगी ग्रंथ अन्यत्र नहीं मिलते, जितने आचार्य महाप्रज्ञ ने रचे। पूर्व राज्यपाल टी.एन. चतुर्वेदी ने कहा 'आचार्य महाप्रज्ञ ने विज्ञान और धर्म के मध्य सेतु निर्माण का महान कार्य किया। आचार्य महाप्रज्ञजी अहिंसा के सबसे बड़े व्याख्याता रहे। वे केवल धार्मिक व्यक्तित्व नहीं थे, बल्कि आचार और व्यवहार में सामंजस्य के उदाहरण थे।'

राज्यपाल डॉ. बी.एल. जोशी ने कहा 'आचार्य महाप्रज्ञ के पास बैठकर यह महसूस होता था कि वे विचारधारा पर चलने वाले सृजनकर्ता थे।'

महिला मंडल दिल्ली की अध्यक्षा सुमन नाहटा ने स्वागत भाषण एवं अशोक संचेती ने आभार ज्ञापन किया। संयोजन सुनीता जैन ने किया। कार्यक्रम की आयोजना में राजेश चेतन, राजेश भंडारी, अरविन्द गोठी, इन्द्र बैंगानी, संजय खटेड़ का सराहनीय श्रम रहा।

अणुव्रत जन-जन तक पहुंचे

हैदराबाद, 7 सितंबर। अणुव्रत महासमिति की बैठक साध्वी सत्यप्रभा के सान्निध्य में एवं स्थानीय समिति के अध्यक्ष उगमचंद सुराणा की अध्यक्षता में हिमायतनगर हैदराबाद सभा भवन में अपराह्न 2.30 बजे आयोजित हुई। अणुव्रत समिति आ.प्र. के मंत्री प्रसन्न भंडारी एवं प्रचार संयोजक रिद्धीश रमेश जागीरदार ने बताया कि अणुव्रत महासमिति के महामंत्री विजयराज सुराणा अणुव्रत संबंधी विभिन्न विषयों पर चर्चा हेतु पधारे। इस संबंध में आयोजित बैठक में विभिन्न विषयों पर चर्चा की गयी। बैठक की शुरुआत अणुव्रत गीत के संगान से हुई। अणुव्रत में विश्वास रखने वाले एवं इस महान कार्य से जुड़ने के इच्छुकों को अणुव्रत आंदोलन से जुड़ने का आह्वान किया गया।

साध्वी सत्यप्रभा ने अणुव्रत आंदोलन की विस्तृत जानकारी दी। नैतिक मूल्यों को जीवन व्यवहार का अंग बनाने की दिशा में आगे बढ़ने का आह्वान किया।

प्रसन्न भंडारी ने कार्यक्रम में पधारे सभी व्यक्तियों के प्रति आभार व्यक्त किया। साथ ही सभी से अणुव्रत आंदोलन को जन-जन तक पहुंचाने में सहयोग करने का निवेदन किया। उन्होंने सभी जाति-धर्म के लोगों से आपसी भेदभाव को दूर कर राज्य एवं देश के विकास में सहयोगी बनने का आह्वान किया।

अणुव्रत महासमिति के महामंत्री विजयराज सुराणा ने कहा अणुव्रत आंदोलन न सम्प्रदाय है, न कोई परम्परा। यह असाम्प्रदायिक और शाश्वत धर्म है। अणुव्रत कार्यक्रमों की शृंखला में इस वर्ष अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण द्वारा उद्घोषित अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह 26 सितंबर 2010 से 2 अक्टूबर 2010 तक क्रमानुसार निर्धारित हुआ है। विजयराज सुराणा का स्वागत समिति के अध्यक्ष उगमचंद सुराणा ने किया। प्रकाश भंडारी ने आभार प्रकट किया। बैठक में अशोक भंडारी, प्रकाश भंडारी, हर्षवर्धन सेठिया, दिलीप डागा, हनुमानमल बैद, रतनलाल दूगड़, नरेन्द्र गौड़, रिद्धीश रमेश जागीरदार, मिर्नला बैद, विजयलक्ष्मी काबरा, हर्षलता दूधिया, रक्षिता बोहरा उपस्थित थे।

अहिंसा प्रशिक्षिका का सम्मान

गंगापुर। अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र मैलोनी-गंगापुर के सिलाई केन्द्र की प्रशिक्षिका ज्योति बैरवा का 15 अगस्त 2010 के पावन प्रसंग पर राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रांगण में स्थानीय प्रशासन द्वारा उपखण्ड अधिकारी माननीय औकारलाल जोशी द्वारा सम्मान पत्र एवं मोमेन्टो से सम्मान किया गया। ज्योति बैरवा पिछले पांच वर्षों से इस केन्द्र पर सिलाई प्रशिक्षिका के रूप में न्यूनतम पारिश्रमिक 500/ प्रतिमाह लेकर अपने दायित्व का निर्वहन कर रही हैं। इस अवधि में ज्योति बैरवा ने 400 महिलाओं एवं युवतियों को सिलाई का प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षित महिलाएं सिलाई मशीन द्वारा अपने परिवार की आर्थिक स्थिति के सुदृढ़ीकरण हेतु भागीदार बन रही हैं। 50 प्रतिशत महिलाओं व युवतियों को रोजगार हेतु अणुव्रत समिति के तत्वावधान में अर्धमूल्य पर मशीनें वितरित की गयी। सौजन्य चन्द्रसिंह अशोक कुमार कोठारी भीलवाड़ा का रहा।

ज्योति बैरवा के श्रम का मूल्यांकन करते हुए प्रशासन ने उन्हें सम्मानित किया। अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र के समन्वयक एवं मार्गदर्शक देवेनद्रकुमार हिरण तथा प्रशिक्षक जगदीश बैरवा हैं।

अहिंसा प्रशिक्षण जन-जन का मिशन बने

बाढ़, 5 सितंबर। आतंकवाद, नक्सलवाद घरेलू हिंसा बेरोजगारी, आर्थिक शोषण तथा नशा के घटाटोप अंधकार फंसती जा रही मानव जाति के लिए आचार्य महाप्रज्ञ, आचार्य महाश्रमण का अहिंसा प्रशिक्षण मिशन प्रकाश की एक किरण है। तनाव नियंत्रण, मानसिक शांति, नैतिकता, संस्कार निर्माण और बेरोजगारी निवारण जैसे मुद्दे पर अहिंसा प्रशिक्षण आशा से अधिक प्रतिफल दे रहा है। यह मिशन समता, सद्भाव, कर्मवाद आदि के प्रति तो समर्पित है ही साथ ही सांप्रदायिक सौहार्द स्थापना के क्षेत्र में इसकी बड़ी कारगर भूमिका है। यहां मैंने देखा सभी प्रशिक्षणार्थी एक साथ सनातन धर्म के गायत्री मंत्र, गुरुवाणी, कुरान शरीफ की आयते भी पढ़ते हैं। यही व्यवहारवाद अहिंसा प्रशिक्षण को जनेन्मुखी बनाने वाले हैं। मेरी स्पष्ट धारणा है कि आचार्य महाप्रज्ञ-महाश्रमण का यह मिशन जन-जन का मिशन बने। मैं इसमें भरपूर मदद और समय भी दूंगा। ये विचार तिलका मांझी विश्वविद्यालय भागलपुर के प्रतिकुलपति डॉ. ध्रुव कुमार ने राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद राजसमंद द्वारा संचालित अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र बाढ़ के प्रांगण में सम्मान समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में व्यक्त किए। इस क्रम में प्राचार्य पद त्याग कर अणुव्रत के लिए समर्पित जीवन दानी कार्यकर्ता प्रो. साधुशरण सिंह 'सुमन' की सेवाओं की प्रशंसा की।

समारोह में स्वतंत्रता सेनानी अनूप नारायण शैक्षणिक संस्थान बिहार-झारखंड की ओर से शिक्षा सेवा, अहिंसक चेतना के विकास तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाने वाले एक चर्चित व्यक्तित्व को प्रतिवर्ष दिया जाने वाला स्वतंत्रता सेनानी अनूप नारायण शताब्दी रत्न सम्मान-2010 डॉ. ध्रुव को प्रदान किया गया।

सम्मान प्रदान करते हुए संस्थान के डायरेक्टर तथा शिक्षक संसद के जिला संयोजक राजेश कुमार 'राजू' ने प्रतिकुलपति की सेवाओं का उल्लेख किया एवं प्रशस्ति-पत्र का वाचन किया।

कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार सिंह, संरक्षक तथा उपाध्यक्ष राजीव कुमार चुन्ना, प्रांतीय मंत्री हेमंत कुमार सहित दर्जनों लोगों ने अपनी भावना व्यक्त की। कार्याक्रम का आयोजन व संयोजन केन्द्र प्रभारी प्रो. साधुशरण सिंह 'सुमन' ने किया। इस अवसर पर केन्द्र के सेवाभावी प्रशिक्षकों राणा शत्रुघ्न सिंह, रवि रंजन, सुधा देवी, नीलम कुमारी, रंजना रानी गुप्ता तथा रिंटु कुमार को आचार्य महाप्रज्ञ सेवा सम्मान प्रदान किया गया। अतिथियों का साहित्य द्वारा सम्मान किया गया। प्रेक्षा योग में सक्रिय भूमिका निभाने वाले संभागियों को भी प्रतीक चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया गया।

आपका मुँह
ऐश-ट्रे या कूड़ादान
नहीं

अणुव्रत नैतिक गीत गायन प्रतियोगिता का राज्यस्तरीय कार्यक्रम

चरित्र निर्माण में अणुव्रत अमोघ अस्त्र : मुनि महेन्द्रकुमार

दिल्ली, 9 सितंबर। अ.भा. अणुव्रत न्यास द्वारा ''ग्यारहवीं अणुव्रत नैतिक गीत गायन प्रतियोगिता'' का राज्यस्तरीय कार्यक्रम अध्यात्म साधना केन्द्र, छतरपुर रोड़, महरौली दिल्ली में आयोजित की गयी। इसमें दिल्ली के 30 से अधिक विद्यालयों के 500 से अधिक चयनित विद्यार्थी सम्मिलित हुए। प्रतियोगिता में वैंकटेश्वर इंटरनेशनल स्कूल द्वारका की वैष्णवी ने कनिष्ठ वर्ग के एकल गायन में प्रथम स्थान प्राप्त किया। अर्वाचीन भारती भवन सी. से. स्कूल विवेक विहार के अलंकार ने वरिष्ठ वर्ग के एकल गायन में प्रथम स्थान प्राप्त किया। समूह गायन के कनिष्ठ वर्ग में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल अशोक विहार ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। समूह गायन के वरिष्ठ वर्ग में वैंकेटश्वर इंटरनेशन स्कूल द्वारका को प्रथम स्थान मिला।

प्रो. मुनि महेन्द्रकुमार ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा जीवन के सही विकास में संगठन का बहुत असर होता है। व्यक्ति के आस-पास का परिवेश उसके विचारों को प्रभावित करता है। जो संस्कार प्रारंभ में आ जाते हैं, वे जीवन भर काम करते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि शुरू से ही बच्चों को संस्कार रूपी सिंचन दिया जाए, तभी उनका वास्तविक विकास हो सकेगा। अणुव्रत आंदोलन चरित्र निर्माण का आंदोलन है अतः अणुव्रत चरित्र निर्माण का अमोघ अस्त्र है।

संघ लोक सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष पी.सी. होता ने अणुव्रत कार्यक्रमों की प्रशंसा करते हुए कहा वर्तमान में इस प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रमों को करने हेतु बल दिया जाये और कहा कि आचार्य तुलसी द्वारा प्रतिपादित अणुव्रत आंदोलन राष्ट्र के नवनिर्माण में सहयोगी सिद्ध हो सकता है। उन्होंने अणुव्रत कार्यकर्ताओं के प्रति आभार व्यक्त किया और अणुव्रत आंदोलन के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए शुभकामनाएं दी।

जी.एस. नारंग मुख्य आयुक्त सीमा एवं उत्पादन शुल्क ने कहा अणुव्रत का दर्शन विद्यार्थियों हेतु संजीवनी है। अणुव्रत के माध्यम से व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन कर सकता है। भारत के मुख्य सतर्कता अधिकारी विनोद अग्रवाल ने बच्चों के सर्वांगीण विकास की बात कही तथा कहा कि प्रत्येक विद्यार्थी सच्चाई के रासते पर चलते हुए ही अपनी मंजिल प्राप्त कर सकता है।

अखिल भारतीय अणुव्रत न्यास के प्रबन्ध न्यासी धनराज बोथरा ने कहा आचार्य तुलसी के संदेश को जन-जन तक पहुंचाने में अणुव्रत न्यास कृत संकल्पित है, विद्यार्थियों के माध्यम से अणुव्रत आंदोलन को प्रभावी बनाने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। प्रतियोगिता के संयोजक विजयवर्धन डागा ने कहा अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से लाखों विद्यार्थियों को संस्कारित किए जाने का प्रयास किया जा रहा है। अणुव्रत न्यास के पूर्व प्रबंध न्यासी के.एल. जैन ने कहा अणुव्रत का प्रारंभिक लक्ष्य वर्तमान समाज में संशोधन करना है। समाज को विकृत करने वाले तत्वों, भ्रष्ट आचरणों, अंधविश्वासों व अर्थहीन रूढ़ परंपराओं के विरुद्ध उसने एक सशक्त आवाज उठाई और समाज ने एक नैतिक चेतना के वातावरण का निर्माण किया। अणुव्रत आधार संयम है, यह प्रत्येक समस्या को संयम के माध्यम से सुलझाना चाहता है। उसका विश्वास है कि संयम ही मनुष्य को शांतिपूर्वक जीवन की व्यवस्था दे सकता है।

अ.भा. अणुव्रत न्यास के संयुक्त प्रबंध न्यासी सुशील कुमार ने न्यास की गतिविधियों की जानकारी दी। सम्पतमल नाहाटा ने बच्चों के सर्वांगीण विकास की बात कही। इस अवसर पर अहलकान पब्लिक स्कूल के प्राचार्य एन.के. शर्मा, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के डॉ. राजपाल, निर्णायक निशांत सिंघल, दिवेश भारद्वाज का सम्मान किया गया। कार्यक्रम में मुनि अमृतकुमार, मुनि अजितकुमार, के.सी. जैन, शान्तिकुमार जैन, गोविन्द बाफना, हरिसिंह तातेड़, डॉ. पी.सी. कुचेरिया, सज्जन कुमार, सुमन नाहाटा, विमल गुनेचा, अशोक संचेती, विभिन्न विद्यालयों के प्राचार्य, शिक्षक एवं विभिन्न संस्थानों के पदाधिकारी उपस्थित थे। संचालन प्रमोद घोड़ावत एवं रमेश कांडपाल ने किया।

जीवन निर्माण का संस्कार सूत्र है अणुव्रत

अहमदाबाद। साध्वी कनकरेखा ने शाहीबाग सभा भवन में आयोजित 'अणुव्रत चेतना दिवस' पर सभा को संबोधित करते हुए कहा जीवन निर्माण का संस्कार सूत्र है अणुव्रत। जो हर राही को अंधकार से प्रकाश की राह दिखाता है। अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आंदोलन की अलख जगाकर सुप्त चेतना को जाग्रत किया। अणुव्रत रूपी छोटे-छोटे संकल्पों के माध्यम से जैन-धर्म को जन-धर्म की पहचान दिलवाई।

साध्वीश्री ने आगे कहा वर्ण जाति और सम्प्रदायातीत अणुव्रत धर्म से व्यक्ति के भीतर संयम, सादगी और सदाचार का द्वीप प्रज्वलित होता है। यह नैतिक आंदोलन है। राष्ट्र के चरित्र को ऊंचा उठाने वाला अणुव्रत, जिससे स्वस्थ परिवार, स्वस्थ समाज एवं स्वस्थ राष्ट्र का स्वप्न साकार हो सकता है। अपेक्षा है हर व्यक्ति अणुव्रती बनें, हर परिवार आदर्श अणुव्रती बनें। तभी यह अणुव्रत चेतना दिवस मनाना सार्थक होगा। साध्वी संवरविभा ने मानवीय आचार संहिता के लिए अणुव्रत की अपेक्षा महत्वपूर्ण बतायी। संचालन नरेन्द्र सुराणा ने किया।

जिला स्तरीण अणुव्रत गीत गायन प्रतियोगिता

राजसमंद, 8 सितंबर। बालोदय कार्याध्यक्ष सुरेश कावड़िया की अध्यक्षता एवं अणुव्रत पाक्षिक के संपादक डॉ. महेन्द्र कर्णावट के मुख्य आतिथ्य में अ.भा. अणुव्रत न्यास द्वारा आयोज्य 'अखिल भारतीय ग्यारहवीं अणुव्रत नैतिक गीत गायन प्रतियोगिता' का आयोजन जिला स्तर पर अणुविभा राजसमंद के तत्वावधान में मदन धोका के संयोजन में साध्वी प्रज्ञाश्री व साध्वी विनयश्री के सान्निध्य में किया गया। प्रतियोगिता में पंचायत समिति स्तर पर 9 विद्यालयों के विजेता 114 बालक बालिकाओं ने भाग लिया। प्रतिभागियों को कनिष्ठ वर्ग एवं वरिष्ठ वर्ग दो वर्गों में रखा गया। मदन धोका ने प्रतियोगिता की पृष्ठ भूमि पर प्रकाश डाला।

मुख्य अतिथि डॉ. महेन्द्र कर्णावट ने आचार्य तुलसी द्वारा रचित अणुव्रत गीत की पृष्ठभूमि बताते हुए इसमें समाविष्ट शब्दों को अनमोल बताया। उन्होंने अणुव्रत नैतिक गीत गायन प्रतियोगिता के प्रति बालकों के रुझान व उत्साह व प्रस्तुति के लिए बधाई देते हुए अणुव्रत नैतिग गीतों को इस प्रतियोगिता के माध्यम से जन-जन तक संप्रेषित करने की सलाह दी। साध्वी प्रज्ञाश्री ने इस कार्यक्रम को जन जीवन को पवित्र करने वाला बताया।

अध्यक्षीय संबोधन में सुरेश कावड़िया ने कहा ये गीत अनमोल हैं, हमें अच्छे भी लगते हैं। लेकिन इसके साथ महत्वपूर्ण बात यह है कि इनको हम अपने जीवन में कितना आत्मसात् करते हैं? जितना हम इन्हें आत्मसात करेंगे जीवन में उतना ही निखार आयेगा। प्रतियोगिता में निर्णायक की भूमिका फतेहलाल अनोखा व मोहर गिरी गोस्वामी ने निभायी।

कार्यक्रम में बालक-बालिकाओं व अध्यापक-अध्यापिकाओं के अलावा डॉ. हीरालाल श्रीमाली, जगजीवन चौरड़िया, अशोक डूंगरवाल, बालकृष्ण बालक, प्रकाश मेहता, चतुर कोठारी, सागरमल कावड़िया, कमलेश धाकड़, राजेन्द्र कोठारी, बालमुकुंद सनाढ्य, साबिर शुक्रिया, विनीता पालीवाल, अणुविभा परिवार सहित अनेकों महानुभाव उपस्थित थे।

समूह गान कनिष्ठ वर्ग में लक्ष्मीपथ सिंघानिया जे.जे. स्कूल कांकरोली ने प्रथम, सरदार भगतसिंह मा.वि. नाथद्वारा ने द्वितीय तथा समूहगान वरिष्ठ वर्ग में लक्ष्मीपथ सिंघानिया जे.के. स्कूल, कांकरोली ने प्रथम, सरदार भगतसिंह मा.वि. नाथद्वारा ने द्वितीय स्थान एवं एकलगान (कनिष्ठ वर्ग) में लक्ष्मीपथ सिंघानिया जे.के. स्कूल, कांकरोली ने प्रथम, श्रीजी पब्लिक स्कूल, नाथद्वारा ने द्वितीय तथा एकलगान वरिष्ठ वर्ग में सरदार भगतसिंह पब्लिक मा.वि. नाथद्वारा ने प्रथम एवं श्रीजी पब्लिक स्कूल, नाथद्वारा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। आभार ज्ञापन अशोक डूंगरवाल ने किया। कार्यक्रम का संयोजन मदन धोका ने किया। कार्यक्रम की व्यवस्था में प्रबंध निदेशक विमल जैन का सराहनीय श्रम रहा।

समिति द्वारा गणवेश वितरण

जालना। अणुव्रत समिति जालना की ओर से नवयुवक गणेश विद्यालय में जरूरतमंद 30 छात्र-छात्राओं को स्कूल यूनिफॉर्म वितरित की गयी। कार्यक्रम के अध्यक्ष डालचंद बोथरा, प्रमुख अतिथि भारतीय जैन संघटना मराठवाडा विभाग के सचिव पवनकुमार सेठिया, अणुव्रत समिति की अध्यक्षा 'अणुव्रत सेवी' रतनीदेवी सेठिया, प्रधानाध्यापिका रजनी बख्तावर व पद्माबाई कोठारी आदि उपस्थित थे। विद्यालय की प्रधानाध्यापिका रजनी बख्तवार ने अपने विद्यालय की ओर से अणुव्रत समिति के सदस्यों का स्वागत किया। पवनकुमार सेठिया ने अणुव्रत आंदोलन की जानकारी दी। उन्होंने विद्यार्थियों को परीक्षा में नकल न करने की बात कही।

रतनीदेवी सेठिया ने कहा बच्चों में नैतिक संस्कारों का होना बहुत जरूरी है एवं अणुव्रत परीक्षा के बारे में जानकारी दी। कंचनबाई बोथरा का सौजन्य और सहयोग रहा। कार्यक्रम में विद्यालय के शिक्षक वर्ग के अलावा, पुष्पा बोरा, लता बंब, सुनिता लूणावत, कमलाबाई सेठिया, मंगलाबाई बोरा, आनंद मरलेचा उपस्थित थे। संचालन एवं आभार व्यक्त विश्वंबर बोधले ने किया।

सिलीगुडी में कवि सम्मेलन

सिलीगुड़ी। अणुव्रत समिति सिलीगुड़ी की ओर से सभा भवन में समणी निर्देशिका परमप्रज्ञा के सान्निध्य में कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। कवि करणसिंह जैन ने बेरोजगार युवाओं की नब्ज पर हाथ रखते हुए कहा तुझे दूर आसमान पर गोल सा चांद तो दिखाई देता है नीचे धरती पर दो रुपये की रोटी दिखाई नहीं देती। कवि ओमप्रकाश पाण्डेय ने सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल खोल दी। कवि इरफान, आजय, डॉ. श्याम सुंदर अग्रवाल, मुन्नालाल शर्मा ने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यंग्य के बाण छोड़े। इसके अलावा कवि व्योमकेश घोष एवं पददास ने बंग्ला भाषा में कविता पढ़ी। समणी प्रेक्षाप्रज्ञा ने कविता पढ़ी, जिसे दर्शकों ने खूब सराहा।

मुख्य अतिथि अधिवक्ता हरिश्चन्द्र सिंघल ने कहा इस तरह के कार्यक्रम से सांस्कृतिक जमीन तैयार होती है। मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए समणी परमप्रज्ञा ने कहा कविताएं जनमानस की जरूरत के लिए होती है। विशिष्ट अतिथि भारतीय स्टेट बैंक के राजभाषा अधिकारी राकेश चतुर्वेदी ने अपने विचार रखे। कार्यक्रम में हनुमान मालू, सुरेन्द्र घोड़ावत, बाबूलाल लूणावत, मदन मालू, शुभकरण नोलखा, ओमप्रकाश शर्मा, दिनेश सोनी, मोहन कोठारी, कमल चोरड़िया, महेन्द्र छाजेड़, तोलाराम सेठिया, सुबोध छाजेड़, प्रमोद दूगड़, रतन मालू, मदन संचेती, नरेन्द्र सिंघी, कमल चोरड़िया उपस्थित थे।

व्रत से होता है जीवन का निर्माण

समदड़ी। मुनि मदनकुमार ने शारदा उच्च माध्यमिक विद्या मंदिर में बच्चों को संबोधित करते हुए कहा व्रत से जीवन का निर्माण होता है। अणुव्रत के छोटे-छोटे नियम जीवन शैली को बदल देते हैं तथा संकल्प शक्ति को पुष्ट कर देते हैं।

मुनिश्री ने आगे कहा सफलता के लिए जीवन में विनम्रता और सहिष्णुता का विकास होना चाहिए। नैतिक मूल्यों पर जोर देते हुए मुनिश्री ने शिक्षा के द्वारा आजीविका के साथ चरित्र का विकास होना चाहिए। आवेश पर नियंत्रण कर सात्त्विक जीवन जीया जा सकता है। मुनि कोमल कुमार ने कहा प्रयोग और प्रशिक्षण के माध्यम से जीवन शैली को सुंदर बनाया जा सकता है। अनिल और रोहित छाजेड़ ने अणुव्रत गीत का संगान किया। प्राचार्य अंबाशकर सोनी ने मुनिद्वय का भावपूर्ण स्वागत किया। कार्यक्रम में मांगीलाल जीरावला और पारसमल जीरावला की प्रमुख उपस्थिति रही।

अणुव्रत लेखिका सुषमा जैन सम्मानित

सहारनपुर। अणुव्रत पाक्षिक की नियमित लेखिका सुषमा जैन को मीडिया क्लब रजिस्टर्ड सहारनपुर द्वारा उनके गरिमामय व्यक्तित्व एवं उल्लेखनीय साहित्यिक कार्यों के लिए 'मूर्धन्य साहित्य मनीषी' की उपाधि से अलंकृत किया गया है। यह उपाधि उन्हें क्लब द्वारा सहारनपुर में आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन में उत्तर प्रदेश शासन के शिक्षा मंत्री डॉ. धर्मसिंह सैनी, प्रमुख सचिव न्याय एवं विधि प्रकोष्ठ उत्तर प्रदेश शासन के.के. शर्मा, विधायक रविन्द्र मोल्हू एवं क्लब के अधिकारियों द्वारा संयुक्त रूप से माल्यार्पण कर, प्रतीक चिह्न एवं प्रशस्ति पत्र भेंट कर प्रदान किया गया। इससे पूर्व भी उन्हें डॉ. भीमराव अंबेडकर फैलोशिप-1999, पर्यावरण विद्, विद्याश्री, ज्ञानश्री, क्रान्तिश्री, कलम का सिपाही, हिन्दी साहित्य रत्न, महिला रत्न, शहीद उद्यम सिंह क्रांतिकारी सम्मान, सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता इत्यादि उपाधियां एवं सम्मान मिल चुके हैं।

www.terapanthinfo.com

देवेन्द्र भाई सार्वजनिक जीवन के जनक थे

राजसमंद 7 सितम्बर। स्वतंत्रता सेनानी, अणुव्रत महारथी एवं गांधी सेवा सदन के संस्थापक काका देवेन्द्र कर्णावट की तृतीय पुण्यतिथि पर गांधी सेवा सदन में देवेन्द्र स्मृति समारोह के अन्तर्गत प्रार्थना सभा, निबंध, कविता, संगीत एवं चित्रकला प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

प्रार्थना सभा में सर्वधर्म अणुव्रत गीत, शरण में आए है, प्यारा हिन्दुस्तान, पायोजी मैंने राम रतन धन पायो, मन मोहन कान्हा लोक गीतों की प्रस्तुति के साथ ही कविताओं का पाठ हुआ। कवि फतहलाल अनोखा ने ''लगाया जो चमन तुमने उसे आबाद रखेंगे, देवेन्द्र काका, तुम्हें हम याद रखेंगे'' कविता का पाठ किया। गांधी सेवा सदन के प्रारंभिक कार्यकर्त्ता कवि चतुर कोठारी ने कहा देवेन्द्रभाई ने राजसमंद में सार्वजनिक जीवन की शुरुआत की। वे ऊर्जावान व्यक्तित्व के धनी थे जिन्होंने सैंकड़ों कार्यकर्ताओं का निर्माण किया और उन्हें सार्वजनिक पहचान दी।

प्रार्थना सभा को संबोधित करते हुए संस्था के कार्यकारी अध्यक्ष डूंगरसिंह कर्णावट ने कहा गांधी सेवा सदन के माध्यम से देवेन्द्र काका ने राजसमंद में सामाजिक एवं शैक्षिक परिवर्तन की धारा बहाई। सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

देवेन्द्र काका की स्मृति में आयोजित माध्यमिक स्तरीय अणुव्रत निबंध प्रतियोगिता मे पूजा दक श्रीजी पब्लिक स्कूल ने प्रथम, ज्योति श्रीमाली बाल निकेतन ने द्वितीय एवं मेघना डोई लक्ष्मीपत सिंघानिया स्कूल ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। कविता प्रतियोगिता में शैलजा दाधीच, सलौनी बापना ने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

गांधी सेवा सदन के मंत्री डॉ. महेन्द्र कर्णावट ने पुष्पाजंलि समर्पित करते हुए कहा देवेन्द्र काका का पूरा जीवन बाल पीढ़ी के विकास तथा नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा में समर्पित रहा। राजसमंद जिले में स्वतंत्रता की अलख जगाने के साथ ही उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से सामाजिक चेतना तथा नैतिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार किया। दुबली-पतली काया पर ऊँचे सपने और उन सपनों को धरती पर उतारने का अनवरत प्रयास करते थे काका। गांधी सेवा सदन उनके सपनों का ही प्रतिफल है। सामाजिक परिस्थितियों के सदर्भ में वे निरंतर सोचते थे। उनके चिंतन में कभी ठहराव नहीं आया। सामाजिक क्रांति के स्वरों ने देवेन्द्रभाई के कर्तृत्व को उजागर किया। सार्वजनिक जीवन के जनक एवं पुरोधा व्यक्तित्व के रूप में वे सदैव याद रहेंगे।

भूमिका दाधीच, आस्था चपलोत, सलौनी बापना, शैलजा दाधीच ने कविता एवं देशभक्ति गीतों का संगान किया। विद्या त्रिपाठी ने गीता सार प्रस्तुत किया। देवेन्द्र काका की प्रतिमा पर माल्यार्पण के साथ स्मृति सभा का आरंभ हुआ जिसका संयोजन कमल सांचीहर एवं मंजू शर्मा ने किया।

संस्था उपाध्यक्ष मधुसूदन व्यास ने वर्ष 2010 का देवेन्द्र पुरस्कार सेवाभावी डॉ. पुष्पा खिलनानी को तथा श्रेष्ठ विद्यार्थी पुरस्कार 2010 बाल निकेतन की पूर्व छात्रा हरदीप कौर को प्रदान किये जाने की घोषणा की।

स्मृति समारोह में बाल निकेतन के विद्यार्थी, अध्यापक-अध्यापिकाएं, गुणसागर कर्णावट, सुरेन्द्र बड़ोला, कमर मेवाड़ी, अफजल खां अफजल, जीतमल कच्छारा, फतहलाल गुर्जर अनोखा, नंदलाल पालीवाल, ललित बड़ोला, भंवरलाल पालीवाल, दरियावसिंह कर्णावट, भगवत शर्मा, सम्पत चोरड़िया, स्नेही श्रोत्रिय, कांता बड़ोला, कंचन, कल्पना, प्रतिभा, डिम्पल कर्णावट, आबिद अली, लक्ष्मीनारायण पालीवाल, मधुसूदन व्यास, जमनाशंकर शर्मा, प्रभेन्द्र त्रिपाठी, रमाकांत प्रसाद, वीरेन्द्र पांडेय, दिनेश तिवारी, रेखा गोयल, के.के. गौड़ प्रमुख रूप से उपस्थित थे।

गांधी सेवा सदन में आंचलिक सम्मेलन

राजसमंद 2 सितम्बर। मेवाड़ अंचल की अणुव्रत समितियों के कार्यकर्त्ताओं का आंचलिक सम्मेलन अणुव्रत महासमिति एवं गांधी सेवा सदन के संयुक्त तत्वावधान में गांधी सेवा सदन में हुआ। सम्मेलन में मेवाड़ की तैरह अणुव्रत समितियों में से दस अणुव्रत समितियों के 28 कार्यकर्त्ताओं पदाधिकारियों ने भाग लिया।

अणुव्रत महासमिति के संरक्षक डॉ. महेन्द्र कर्णावट ने कार्यकर्ताओं की जिज्ञासाओं को समाहित किया। राजस्थान प्रादेशिक अणुव्रत समिति के अध्यक्ष सम्पत सामसुखा ने संगठन यात्राओं के दौरान प्राप्त जिज्ञासाओं को प्रस्तुत किया तथा अणुव्रत अनुशास्ता की प्रस्तावित मेवाड़ यात्रा के दौरान अणुव्रत की कार्ययोजना निश्चित करने का आव्हान किया।

गंभीरसिंह राठौड़ आमेट, राधेश्याम राणा रीछेड़, भंवरलाल खाब्या चित्तौड़गढ़, जीतमल कच्छारा, गणपत धर्मावत, जीवन मादरेचा राजसमंद, लक्ष्मीलाल गांधी, मिलाप कोठारी, पुखराज दक भीलवाड़ा, कल्याणमल गोखरु, नोरतमल कांठेड आसीन्द, गोपाललाल पंचोली, सोमेश्वर व्यास शाहपुरा आदि ने अपने विचार एवं सुझाव रखे। विचार विमर्श उपरांत मेवाड़व्यापी अणुव्रती बनो अभियान, नशामुक्ति सम्मेलन, अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह आयोजित करने के निर्णय लिये गये। अणुव्रत अनुशास्ता की मेवाड़ यात्रा के समय विनयपुरम्, रीछेड़, राजसमंद एवं भीलवाड़ा में नशामुक्ति सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय हुआ। आदर्श अणुव्रत वाक्यों का भित्ति अंकन मार्च 2011 तक कराने का निर्णय लिया गया। राजस्थान प्रादेशिक अणुव्रत समिति के संगठन मंत्री मदन धोका ने आभार व्यक्त लिया।

जीवन-शक्ति के साथ जुड़ा है श्वास

कोयम्बटूर। साध्वी कीर्तिलता ने नेहरू विद्यालय स्कूल के विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा 25-30 वर्ष की उम्र में यदि किसी को संस्कार देना चाहें तो असंभव है। विद्यालय में संस्कार निर्माण व चरित्र निर्माण का कोई प्रावधान नहीं होता। विद्यालयों में शिक्षा आजीविका को ध्यान में रखकर दी जाती है। ऐसी स्थिति में बच्चे संस्कारित कैसे हो सकते हैं। साध्वीश्री ने शिक्षकों का ध्यानाकर्षित करते हुए कहा कि बहुत जरूरी है कि विद्यालयों में ऐसी शिक्षा भी मिले, जो बच्चों को एक अच्छा इंसान बनाने में सहायक बने। जो बच्चे बचपन से यानी 5 वर्ष की अवस्था से ही लम्बा श्वास लेने का अभ्यास करता है उसमें चरित्र का विकास होता है, क्रोध कम आता है। बुराइयां कम होती जाती हैं। क्योंकि श्वास का संबंध हमारी जीवन-शक्ति के साथ जुड़ा हुआ है। साध्वी पूनमप्रभा ने श्वास संबंधी प्रयोग करवाए। प्रधानाध्यापक सेल्वराज ने साध्वीश्री का स्वागत किया। संतोषकुमार ने परिचय दिया। अणुव्रत समिति के अध्यक्ष डॉ. गणेशन ने भी अपने विचार रखे।

www.terapanthinfo.com

प्रेरक एवं अनुकरणीय व्यक्तित्व : मिलाप दूगड़

विजयराज सुराणा

स्व. श्री मिलाप दूगड़ एक कुशल व्यवसायी, उच्च साहित्यकार, भाषाविद्, संगीतज्ञ, प्रखर संयोजक एवं सक्रिय समाजसेवी थे। उनका जन्म 9 नवम्बर 1944 को सरदारशहर (चुरू-राजस्थान) में हुआ। राजस्थानी के साथ-साथ उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी तथा बंगला भाषा में प्रवीणता प्राप्त की। उन्होंने एशिया, यूरोप एवं अमेरिका महाद्वीपों की अनेक बार विस्तृत यात्राएं कीं। वे उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान मान्य विश्वविद्यालय गांधी विद्या मंदिर सरदारशहर के कुलपति पद पर रहे। सात वर्षों तक गांधी विद्यामंदिर के अध्यक्ष भी रहे। इस समयावधि में संस्थान द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में अशिक्षा, व्यसन एवं आर्थिक व सामाजिक पिछड़ेपन के उन्मूलन में अमूल्य योगदान दिया गया। पूर्व प्राथमिक से लेकर पी.एच-डी. तक के अध्ययन, अनुसंधान क्रम में लगभग 12000 छात्र-छात्राओं को शैक्षिक सुविधा प्रदान करने में सतत संलग्न रहे। वे कलकत्ता की अनेक संस्थाओं के विभिन्न पदों पर रहते हुए उत्तरदायित्व निर्वहन में सक्रिय रहे।

साहित्यिक क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान सराहनीय था। उनके द्वारा लिखित कविता, वार्ता एवं निबन्ध आदि का अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन हुआ। 'पीयूष दंश' गीत-विधा में प्रणीत उनकी मौलिक काव्यकृति है। उन्होंने राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित सेमिनारों, कार्यशालाओं तथा सम्मेलनों का संयोजन अथवा उनमें सहभागिता की। उन्होंने देश-विदेश (भारतीय उच्चायोग, लंदन सहित) में संगीत प्रस्तुति की। उन्होंने आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय चेतनामय अनेक गीतों के कैसेट प्रकाशित किए।

श्री मिलाप श्री दूगड़ का प्रत्येक कार्य अपने आप में असाधारण होता था। उनकी मानवीय भावना एवं करुणामय जीवन उनके क्रिया-कलापों से परिलक्षित होते हैं। 1999 में जब राजस्थान में भयानक दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हुई तब पशुधन को बचाने के लिए उनके प्रयास से एक संस्था ''राजस्थान सेवा समिति'' का गठन किया गया। उसके कोषाध्यक्ष का दायित्व उन्होंने स्वयं संभाला। इस संबंध में उन्होंने भयंकर गर्मी के जून माह में जगह-जगह यात्रा करके अकाल राहत हेतु व्यापक स्तर पर धन संग्रह किया एवं अकाल प्रभावित क्षेत्रों में जगह-जगह राहत कार्य करवाए। इसी प्रकार कारगिल युद्ध के दौरान मिलापजी के नेतृत्व में गांधी विद्या मंदिर के कार्यकर्ताओं द्वारा दस लाख रुपये की राशि इकट्ठी करके जिला प्रशासन को दी गयी। इस अभियान में मिलापजी ने जगह-जगह राष्ट्र सुरक्षा एवं देशप्रेम की भावना को सर्वोपरि बताते हुए जन-साधारण में देश-प्रेम की भावना का संचार किया।

भुज के भूकम्प ने करुणामय मिलापजी के हृदय को झकझोर कर रख दिया। उस समय लाखों लोग भूकम्प से प्रभावित होकर बेघर हो गए। इसी चिंतन को मद्देनजर रखते हुए उन्होंने प्राथमिक रूप से प्रभावित व्यक्तियों के लिए आवास व्यवस्था हेतु तीस लाख रुपये के तम्बू लगवाए। वे स्वयं आगरा गए और वहां से अच्छी किस्म के तम्बू खरीदकर भुज में भिजवाए। उनका यह चिंतन था कि पीड़ित व्यक्तियों को जो वस्तु दी जाये वह सम्मान के साथ, स्वच्छ एवं उत्तम रूप में दी जाए। इसलिए जो वस्त्र व सामान आदि गांधी विद्या-मंदिर के कार्यकर्ताओं ने इकट्ठा किया, उन्होंने उसकी धुलाई, प्रेस, पैकिंग इत्यादि करवाकर व्यवस्थित रूप से प्रभावित व्यक्तियों में वितरित करवाया। उन्होंने सादा जीवन व उच्च विचार की भावना को अपने जीवन में अक्षरशः उतार लिया था। इसी सादगी के कारण 2008 में उन्हें फिरोज गांधी सादगी सम्मान प्रदान किया गया। 1998 में अमेरिकन बायोग्राफिकल सोसायटी द्वारा मैन ऑफ द ईयर तथा 1997 में पी.सी. सेन अवार्ड द्वारा भी नवाजा गया।

श्री मिलाप दूगड़ अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनन्य भक्त एवं उनके दिशा-निर्देशों व शिक्षाओं की पालना में तत्पर रहते थे। 9 मई 2010 का अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री महाप्रज्ञ के आकस्मिक निधन होने पर आपने गांधी विद्या मंदिर में 22 मई 2010 को वर्तमान आचार्य श्री महाश्रमण के पदाभिषेक समारोह का अतिभव्य आयोजन करवाया, जिसकी व्यवस्थाओं की सर्वत्र सराहना की गयी। श्री मिलाप दूगड़ जुलाई 2010 के अंतिम सप्ताह में इस पार्थिव शरीर से मुक्त हो ब्रह्म में विलीन हो गये।

इस महामना के आकस्मिक निधन पर अणुव्रत परिवार की भावभरी श्रद्धांजलि।

महामंत्री : अणुव्रत महासमिति

www.terapanthinfo.com

कृति

दिव्य-ज्योति महाप्रज्ञ

एल.आर. भारती

इस सदी के महान संत, अहिंसा, मानवीय एकता, सांप्रदायिक सौहार्द के पेरोकार तथा विश्व शांतिदूत अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रसिद्ध साहित्यकार इकराम राजस्थानी द्वारा लिखी गई ''दिव्य-ज्योति महाप्रज्ञ'' एक सटीक एवं प्रेरणास्प्रद पुस्तक है। इकराम भाई हिन्दी, उर्दू तथा राजस्थानी के एक नामचीन लेखक, कवि एवं मीडिया विशेषज्ञ ''नेशनल कमैंटेटर'' हैं जिन्होंने पुस्तक के एक-एक छंद में मधुर रस और आचार्य महाप्रज्ञ के कृतित्वों का सत इतने सरल और सहज ढंग से प्रस्तुत किया है कि आकार में लघु दिखने वाली इस पुस्तक को पाठक एक बार खोलेगा तो पूरी तरह से पढ़कर ही मानेगा। निश्चित ही यह पुस्तिका महाप्रज्ञजी के अनन्य भक्तों, अनुयायियों के लिए तो धरोहर है ही, परन्तु जैनेत्तर पाठकों को भी पुस्तिका में उल्लिखित छंदों के माध्यम से इस महान ऋषि पुरुष के संपूर्ण संयममय जीवन को जानने का अवसर मिलेगा।

अणुव्रत महासमिति के इस यादगार प्रकाशन का कोयम्बटूर निवासी निर्मल एम. रांका तथा उनके भ्राता नरेन्द्र एम. रांका के सौजन्य से अपने पिताश्री समाज भूषण, राजस्थान रत्न स्व. मोतीलाल रांका की छठी पुण्यतिथि एवं आचार्य महाश्रमण पदाभिषेक के अवसर पर लोकार्पण हुआ।

छंदों से गुंजित इस पुस्तिका को बार-बार पढ़ने को जी चाहता है। इकराम भाई ने लयबद्ध शैली में एक-एक छंद में आचार्य महाप्रज्ञ के जीवन दर्शन के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत कर जनमानस को प्रेरित किया, और सामाजिक समरसता कायम करने की दिशा में एक सराहनीय प्रयास किया है।

मुनि सुखलालजी ने इस रचना पर इकराम राजस्थानी के बारे में बहुत ही सार की बात कही है कि मैं दिव्य-ज्योति में काव्यालंकारों की चर्चा नहीं कर रहा हूं पर इकराम के शब्दों का चयन इस प्रकार का है कि वे स्वयं पाठक को अपनी ओर खींचते हैं। जब वे महाप्रज्ञ के संदर्भ में अरिहंत शब्द का प्रयोग करते हैं तो लगता है इन्होंने पूरी परम्परा को पढ़ा है। यह ठीक ही है क्योंकि इकराम भाई ने आचार्य महाप्रज्ञजी के जीवन दर्शन के एक-एक पक्ष को पुस्तक में बड़े मार्मिक और सटीक ढंग से उजागर किया है। पुस्तक का यह छंद देखें

मानव की सेवा को सच्चा कर्म बनाया जिसने,
सत्य-अहिंसा, प्रेम-शांति को धर्म बनाया जिसने,
अणुव्रत के आदर्श को अपना गर्व बनाया जिसने,
करुणा और दया को, मन का मर्म बनाया जिसने,
जिस मुख से हर क्षण उच्चारित एक सत्य होता है।
जो जीवन का अर्थ समझले, महाप्रज्ञ होता है।।

अणुव्रत लेखक मंच के संयोजक डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' ने

इस पुस्तिका के बाबत अपने बधाई संदेश में कहा विलक्षण काव्य प्रतिभा के धनी राष्ट्र व्यक्तित्व से संपृक्त इकराम राजस्थानी की लेखनी से प्रसूत यह खण्ड-काव्य ''दिव्य-ज्योति महाप्रज्ञ'' इस भौतिकता संकुल, इंद्रिय चेतना बहुल संसार के गहन अंधकार में दिव्य-ज्योति को विकिरण कर लोक मंगल की भूमिका तैयार करेगी। इसी क्रम में इस काव्यकृति के लिए हिन्दी एवं अंग्रेजी में पद्मश्री सम्मानित साहित्यकार डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ने कहा इकराम राजस्थानी ने 'दिव्य-ज्योति महाप्रज्ञ' काव्य कृति का प्रणयन कर जो पुण्य अर्जित किया है वह अन्य भाषाओं के कवियों के लिए प्रेरणा का विषय है।

अणुव्रत महासमिति का यह प्रकाशन एवं इकराम राजस्थानी की यह अनुपम कृति भारतीय अध्यात्म परंपरा के युगदृष्टा संत आचार्य महाप्रज्ञ के मानवीय, अहिंसक, शांति, सांप्रदायिक सौहार्द एवं नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना के क्षेत्र में किए जा रहे भगीरथ प्रयास अणुव्रत अवधारणा में यकीन रखने वाले लोगों को ही नहीं अपितु जो भी इसे पढ़ेगा उसे झकझोर देगी और आंदोलित करेगी एक दीपशिखा बनकर, ऐसा विश्वास बनता है।

काव्य के साथ पुस्तिका की भाषा शैली अत्यन्त प्रभावशाली और रोचक है। कृति पाठक की जिज्ञासा को संवादित करते हुए उसे पूरी पढ़ने के लिए उत्साहित करेगी। पुस्तिका की छपाई और डिजाइन भी बहुत आकर्षक है। पुस्तक के अंतिम पृष्ठों में लेखक ने अपनी श्रद्धांजलि अत्यन्त मार्मिक शब्दों में व्यक्त करते हुए आचार्य महाश्रमण के प्रति भी अपनी नमन वंदना छंदों में प्रस्तुत कर अणुव्रत आंदोलन के प्रति अपनी अटूट आस्था, सांप्रदायिक सौहार्द और राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया है वह काबिलेतारीफ ही नहीं अपितु आज के प्रदूषित वातावरण को शुद्ध और पवित्र करने का प्रयास भी है।

पुस्तक	:	दिव्य-ज्योति महाप्रज्ञ
लेखक	:	इकराम राजस्थानी
पृष्ठ	:	60 मूल्य : 40 रुपये
प्रकाशक	:	अणुव्रत महासमिति नई दिल्ली

रोशनारा रोड़, दिल्ली–110007

www.terapanthinfo.com